आधुनिक
भारतीय
आर्य भाषाओं
का
पुनर्वर्गीकरण
(...री एवं जैसलमेरी बोलियों का भाषा-
वैज्ञानिक अध्ययन)
डॉ. घनश्याम व्यास

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का पुनर्वर्गीकरण

(दो बोलियों का अध्ययन)

डॉ० घनश्याम व्यास

लेखक :
डॉ० घनश्याम व्यास

प्रकाशक :
आर० सिंह
ज्ञान गंगा,
रायपुर (म० प्र०)

प्रथम संस्करण : १९७१

सुदर्शन प्रिंटिंग प्रेस एवं
शालिनी मुद्रणालय, नागपुर
में मुद्रित
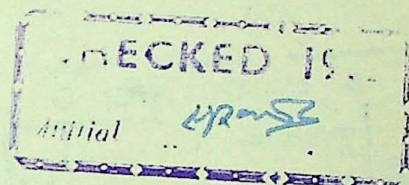
मूल्य : आठ रुपये पचास पैसे

समर्पण

भाषा विज्ञान के आदि गुरु
आचार्य पाणिनि

एव

पूज्य स्वर्गीय नाना हीरालाल जी
केवलिया को

अनुक्रमणिका

भूमिका

भाषाशास्त्रीय अध्ययन अपने आपमें महत्त्वपूर्ण है। सामान्यतः भारत में भाषा-शास्त्रीय अध्ययन का विकास अभी तक साहित्यिक भाषाओं तक ही सीमित रहा है। क्षेत्रीय बोलियों का अध्ययन अत्यंत सीमित रूप में ही प्रस्तुत किया जा सका है। वास्तविकता यह है कि समस्त साहित्यिक भाषाओं का विकास क्षेत्रीय बोलियों के विकास से ही सम्बद्ध है। बोलियों के अध्ययन के प्रति हम उदासीन इस कारण से भी रहे हैं कि इनका साहित्य उपलब्ध नहीं, और न इनका निश्चित विकास क्रम ज्ञात है। वास्तव में किसी भी क्षेत्र की बोली का मूलरूप क्रमशः परिवर्तित होते रहता है। यह परिवर्तन इतनी मंद गति से होता है कि इसका हमें स्पष्ट परिणाम ५०० से १००० वर्षों के अन्तर के शब्दों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है। यह तथ्य है कि आज की बोली १००० वर्ष पूर्व की से सर्वथा भिन्न है। इसका सबसे महत्वपूर्ण एक कारण है व्यक्तियों के ध्वनि-यंत्रों में अन्तर होना। ध्वनि यंत्रों के अन्तर ही अत्यन्त मंदगामी परिवर्तन प्रस्तुत करते हैं। जिस प्रकार दो सरल रेखाओं के तिरछेपन में यदि १००० अंश का अन्तर हो, तो यही अन्तर सैकड़ों मील के दूरी पर जाकर अधिक हो जाता है। इतना सब कुछ होते हुये भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि बोलियों का शब्द समूह या मृत रूप अवश्य ही विद्यमान रहता है। परिवर्तन अवश्य होता है, परन्तु बोलियों के शब्द समूह अवश्य विद्यमान रहते हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये क्षेत्रीय बोलियों का अध्ययन किया जा रहा है, आगे जिससे भाषाओं के विकास का मूल ज्ञात हो रहा है, एवं आगे हो सकेगा।

प्रस्तुत ग्रंथ के माध्यम से मैं आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के पुनर्वर्गीकरण को संदर्भित कर रहा हूँ। वस्तुतः भारत के गणतंत्र घोषित होने के पश्चात् इस ओर ध्यान ही नहीं दिया गया। इस समय काश्मीरी भाषा का भी भारतीय आर्य भाषाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। इसका महत्त्व प्राचीन काल से स्वीकृत है। मैंने अपने वर्गीकरण में काश्मीरी को भी स्थान दिया है। काश्मीरी भी आर्यभाषा है, इस मत की पुष्टि अनेक विद्वान् कर चुके हैं। मेरे वर्गीकरण का मूलाधार ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं भाषा सम्बंधी रचनात्मक भेद एवं शब्द तथा वाक्य प्रयोग का अन्तर है। ध्वनि-समूहों की समानता होते हुये भी कुछ क्षेत्रों की भाषा में वाक्य एवं शब्द प्रयोग में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। मैंने वर्गीकरण करते समय इन पक्षों को ध्यान में रखते हुये वर्गीकरण को विशिष्ट ढंग से वैज्ञानिक स्वरूप देने का प्रयत्न किया है। मैंने आधुनिक

भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण करने के पूर्व भारतीय आर्य भाषाओं का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया है, एवं हिन्दी की साहित्यिक एवं उपशाखाओं की भी संक्षिप्त चर्चा की है ।

वर्गीकरण अन्त में देने का प्रमुख कारण यही है कि विद्वत् पाठक प्रारंभ में भारतीय भाषाओं की संक्षिप्त जांनकारी एवं हिन्दी से सम्बन्धित भाषाओं और उपभाषाओं की जानकारी के पश्चात् वर्गीकरण की वैज्ञानिकता की जाँच कर सके । विश्वास है विद्वत् पाठकगण वर्गीकरण की वैज्ञानिकता से सहमत हो, मुझे परामर्श प्रदान कर उपकृत करेंगे ।

मै यह निश्चित रूप से स्वीकृत करते हुये कार्य की ओर अग्रसर होता हूँ, कि प्रत्येक पक्ष विकसनशील होता है, एवं उसमें परिवर्तन अवश्यंभावी है ।

वर्गीकरण के पश्चात् मैंने सूदूर पश्चिम की जैसलमेरी बोली एवं भारत के मध्य में स्थित नागपुर की नागपुरी बोली (मराठी का) संक्षिप्त में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

भाषा विज्ञान के कार्य की प्रेरणा मुझे सर्वप्रथम "हिन्दी मराठी समीक्षा का तुलनात्मक अध्ययन" पर शोध–कार्य करते समय गुरुवर्य डॉ० वि० भि० कोलते से मिली (सम्प्रति नागपुर विश्वविद्यालय के कुलगुरू हैं ।) जब उनके समीक्षा कार्य के सम्बध में उनसे भाषा के सम्बन्ध में चर्चा हुयी थी । शोध कार्य को प्रशस्त करने मैं स्व० ज्यूल ब्लॉख की पुस्तक "भाषा" का इतिहास से अत्यधिक प्रेरणा प्राप्त कर सका । पुना के डेक्कन कालेज के डॉ० एस० एम० कत्रे एवं डॉ० ए० एस० घाटगे ने भाषा विज्ञान के कार्य के लिए प्रोत्साहन दिया एवं पूर्ण सहयोग प्रदान करने का आश्वासन दिया । प्रस्तुत कार्य का श्रेय तो उल्लिखित विद्वानों को ही है । मैं तो केवल परिश्रम कर्ता भर हूँ ।

प्रस्तुत कार्य को पुस्तक रूप में लाने में मेरे गुरु डॉ० कमलाकांत पाठक का आदेश नहीं भूल सकता । पुस्तक को यथा योग्य बनाने में मेरे मित्रों डॉ० रामनारायण सोनी, श्री दुर्गाशंकर मिश्र, श्री खन्नाजी का सहयोग अविस्मरणीय है । पुस्तक के मुद्रण के लिये मुद्रकों का सहयोग विशिष्ट रूप से रहा है । अत: मैं सबका अनुग्रहीत हूँ ।

प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से विद्वत् पाठकों की सेवामें वर्गीकरण प्रेषित है ।

आषाढी एकादशी
संवत २०२८
नागपुर

घनश्याम व्यास

१. भाषा, ध्वनि और लिपि

भाषा का सामान्य रूप हम सब जानते हैं। समझते हैं। सहज ही में कहते हैं, कि भाषा का क्या वह तो अपने आप सीख लेते हैं। सत्य है। परन्तु गंभीरता से विचार किया जाय तो स्पष्ट होगा, कि भाषा प्रारंभ में एक जटिल तथ्य रहता है। बच्चा एक वर्ष का होते-होते म् + म् + म + अ + म + अ + मा बोलना सीख लेता है। साथ ही साथ बा, मा, बाई और कुछ ऐसे सामान्य शब्द है, उसकी बुद्धि एव विकास के अनुरूप उन्हें शब्द ही कहना चाहिये–बोलने लग जाता है। यहाँ हम भाषा के सम्बन्ध में विचार करते हैं।

यह जीव वैज्ञानिकों का विषय है, कि मानव के शरीर के अवयवों का विकास कितने लम्बे अर्से के पश्चात् हुआ है। मेरा इस सम्बन्ध में स्पष्ट मत है कि एक भाषा-वैज्ञानिक के लिए भी अनिवार्य है, कि वह भाषा का अध्ययन करने के पूर्व मानव-अवयवों के विकास के क्रमिक रूप की पूर्णतः जानकारी प्राप्त कर ले। कारण, मानव के अवयवों के विकास के साथ ही भाषा का सम्बन्ध जुडा हुआ है। बच्चे के विकास को लक्ष्य कर यह निश्चित किया जा सकता है, कि वह किन अवयवों के विकासानन्तर केवल "रोना" की ध्वनि के अलावा कुछ अन्य शब्दों की ध्वनियों को उच्चरित करना प्रारंभ कर देता है। इन तथ्यों के लिए मानव के प्रागैतिहासिक काल के पूर्व की स्थिति की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है।

मानव के शारीरिक अवयवों के विकास के पश्चात् ही भाषा का उद्गम हुआ है, यह सुस्पष्ट तथ्य है। पृथ्वी पर मानव का विकास भूत के इतने असीम गर्भ की कथा है कि, उसकी कल्पना भी निरर्थक है। हम इतना भर कह सकते हैं, कि प्रारंभ में वह छोटा सा प्राणी रहा होगा, तद्नंतर धीरे-धीरे विकसित होते हुये मानव के रूप को प्राप्त कर सका है। उसके लिए वनमानुष का उदाहरण हमारे समक्ष है ही।

"मानव-सभ्यता के विकास के लिए भाषा एवं हाथ प्रमुख हैं।"
ज्यूल ब्लॉक भाषा का इतिहास प्राक्कथन पृष्ठ १

व्यावहारिक एव मानसिक विकास के लिए मानव के केवल हाथ प्रमुख प्रतीक रहे हैं, हम स्वीकार नहीं कर सकते। मानव ने हाथ से केवल अपने उदर-पोषण के निमित्त शक्ति का ही संयोजन किया था। वास्तव में उसे अपने शारीरिक अवयवों में से कई अवयवों का सहारा लेना पडा है। जब मानव प्राणि शास्त्र के काल के बंधनों को तोडता हुआ अग्र पथ पर आया तब मानवता के इतिहास का उपक्रम प्रारंभ हुआ। मानवता के इतिहास का क्रम मानव की प्रमुख इंद्रियाँ आँख, कान, एवं मस्तिष्क रूपी ज्ञानेन्द्रियों के अपूर्व सहयोग से प्रारंभ हुआ है, कहना अनुचित न होगा। यह सुस्पष्ट तथ्य है कि मानव के विकास का क्रम इन्हीं के आधार एवं सहारे से विकसित हुआ है। इन इंद्रियों की सहायता से मानव ने अपने लिए सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि उपलब्ध की-वह है भाषा। भाषा क्या है? भाषा का विकास क्रम किस प्रकार हुआ है? आदि प्रश्नों पर विचार करना भाषा वैज्ञानिक का ही केवल कार्य नहीं है। इसके लिए एक साथ प्राणि-शास्त्र, प्रागैतिहासिक-वेत्ता, इतिहासज्ञ आदि की आवश्यकता है। भाषा के उद्‌गम के लिए प्राचीन अवशेषों, शिलालेखों आदि का भी अध्ययन आवश्यक है। यह कार्य कोरा भाषा-वैज्ञानिक नहीं कर सकता।

मानवीय अवयवों के ज्ञान तंतुओं की सजगता ही भाषा का विकास है। सर्वप्रथम मानव ने अपनी प्रमुख इंद्रियों के माध्यम से एक साथ पदार्थ देखने, सुनने और समझने की प्रक्रिया अनुभवित की है। उसने आँखों से कुछ देखा। उसी समय कहीं कुछ गिरा, तब कानों से सुना। उसी समय मानव के मस्तिष्क में आँखो से देखने और कानों से सुनने की प्रतिक्रियाएँ हुयी। परिणामतः देखे और सुने हुये तथ्यों के सम्बन्ध में उसने अपने ज्ञान तंतुओं की सहायता से विचार करना प्रारंभ किया था। विचारसरणी के प्रारंभ ने ही मानव के मुख से ध्वनि को उच्चारित कराया था। यह मानव के अस्तित्व में आने के साथ ही प्रारंभ हुआ है, निश्चित रूप से कह सकते हैं।

भाषा का उद्‌गम

मानवीय भाषा का उद्‌गम मानव के ज्ञान तंतुओं की सक्रियता का उदय ही है उसके चतुर्दिक विकास का बीजारोपण था। जिस दिन मानव के मस्तिष्क की क्रियाएँ संचारित एवं संचालित हुयी थी, एवं उसने आँखों के द्वारा देखी गयी वस्तुओं तथा कानों के द्वारा सुनी गयी ध्वनियों के सम्बन्ध में विचारणा प्रारंभ कर दी थी, उसी दिन से मानव की सभ्यता-संस्कृति के विकास का शुभोदय हुआ था। उसी दिन से शुभारंभ हुआ था। यह कटु सत्य है कि हम उस दिन के लिए केवल "शुभ-दिन" की संज्ञा देकर ही सन्तुष्ट हो सकते हैं, परन्तु वह दिन कौनसा था यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते। तदुपरांत

मानव ने आँखों के द्वारा देखी गयी वस्तुओं एवं कानों के द्वारा सुनी गयी ध्वनियों को समझने के साथ-साथ उनके सम्बन्ध के कुछ निश्चित तथ्य या रूप स्थापित करने प्रारंभ किये थे। यहीं से मानवीय ज्ञान-विज्ञान का सूत्रपात हुआ कहना अतिशयोक्ति नहीं है। ज्ञान-विज्ञान के सूत्रपात में सर्वप्रथम मानव ने जिस अंग की ओर अपना कदम बढ़ाया था, वह भाषा क्षेत्र ही था। भाषा मानव निर्मित एक ऐसी संस्था है, जिसकी आवश्यकता उसे सर्वप्रथम सर्वाधिक महत्वपूर्ण ज्ञात हुयी थी। हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी हमें देखने को मिलाता है और वह है बच्चे का सर्वप्रथम माँ, मामा आदि शब्दों को उच्चारित करने का प्रयत्न। साथ ही जब वह ध्वनियाँ उच्चरित करने लगता है, तब कितना प्रसन्न होता है, यह अनुमान केवल किया जा सकता है। इससे अधिक कुछ नहीं। अतः मेरी दृष्टि से भाषा का उद्गम मानव की सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठ सफलता रही है, एवं ज्ञान-तंतुओं के क्रियाशील होने के साथ ही है। यह निश्चित है, कि मानव के ज्ञान-तंतु कब क्रियाशील हुये थें, निश्चित तिथि आधुनिक युग में बताना सर्वथा असंभव ही नहीं, वरन् कल्पना के परे की बात है।

भाषा के प्रणेता

भाषा का उद्गभ मानव के ज्ञान-तंतुओं के क्रियाशील होने से सम्बन्धित है। इन ज्ञान तंतुओं को प्रोत्साहित करने का कार्य मानव की प्रमुख इंद्रियों में से आँख-कान ने सर्वप्रथम किया है। आँखों के माध्यम से देखने और कानों के माध्यम से सुननें वाले तथ्यों को मानव ने ज्ञान तंतुओं की विचारणा शक्ति के सहारे नये-नये रूप और नाम देनें प्रारंभ किये थे। बच्चे आज भी आँख और कान के माध्यम से सर्वप्रथम भाषा का ज्ञान प्राप्त करते हैं। सुस्पष्ट है, कि भाषा के उद्गम की मूल प्रक्रिया तंतुओं से प्रारंभ हुई थी, तो उसे आधार एवं प्रोत्साहन आँख और कान ने दिया। तदर्थ यह कहना अत्युक्ति नहीं कि भाषा के प्रणेता आँख और कान हैं। यहाँ यदि यह भी कह दें, कि मानवीय भाषा का उद्गम मानव के प्रमुख अवयव (ज्ञानेंद्रियों के रूप में) आँख और कान हैं। इन्हीं अवयवों ने मानव के मस्तिष्क को झकझोरा है, तथा मानव को अपने लिए संकेत बनाने की ओर अग्रसर किया है। संक्षेप में, यहाँ तक पहुँचने के पश्चात् हम यह कहें, 'कि भाषा के प्रणेता, उद्गम कर्ता को बढावा देने वाले ये ही अवयव हैं।

भाषा और ध्वनि

जिस दिन मानव के कानों ने आवाज सुनने की शक्ति प्राप्त की थी, उसी दिन से भाषा के संकेत प्रारंभ हो गये थे। यह आवाज ही ध्वनि है। ध्वनियाँ,

मानव ने प्रारंभ में किस प्रकार की सुनी। थी इस सम्बन्ध में बहुत पहले ही भाषा, वैज्ञानिक विचार कर चुके हैं। हवा की सरसराहट, पत्तों का गिरना, आदि, आदि, ध्वनियाँ ज्ञान तंतुओं के सजग होते ही मानव के अवयव ग्रहण करने लगे, एवं आँखों द्वारा दिखाई देने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में अपनी बुद्धि-विकास के अनुसार ध्वनियों का निर्माण करने लगे थे। प्रारंभ में दिखाई देने वाली वस्तुओं के नामकरण करने लगे थे। वे उस समय जिस प्रकार सोच-समझ पाते थे, उस प्रकार वस्तुओं का नामकरण करने लग गये थे, एवं उसी प्रकार की ध्वनि का निर्माण करने लग गये थे। इस प्रकार भाषा के लिए चुनी गयी वस्तुओं के नामों के साथ उनकी ध्वनियाँ बननी प्रारंभ हो गयी थी।

भाषा ध्वनि और लिपि

विकास के साथ अनेक प्रकार की ध्वनियों का निर्माण हुआ, तथा मानव के विकसित ज्ञान तंतुओं ने ध्वनियों के लिए निश्चित संकेतों की बात सोची थी, उसी दिन से भाषा के लिपिबद्ध होने की कल्पना को रूप मिलना प्रारंभ हो गया था। आज यह सब सोचते समय हमें कुछ भी कष्ट नहीं होता। वास्तव में जब प्रथम बार मानव ने सकेतों की बात सोची थी, उसी दिन से भाषा के लिपिबद्ध होने की कल्पना को रूप मिलना प्रारंभ हो गया था। आज यह सब सोचते समय हमें कुछ भी कष्ट नहीं होता। वास्तव में जब प्रथम बार मानव ने किसी ध्वनि के लिए संकेत की बात सोची थी, तब उसके समक्ष कितनी बडी समस्या रही थी, इसकी कल्पना भर कर सकते हैं, इससे अधिक कुछ भी नहीं। उदाहरणार्थ, जब हम किसी कार्य को प्रारंभ करने के सम्बन्ध में विचार करते हैं, तब कितनी बडी समस्या खडी हो जाती है। कार्य प्रारंभ होने के पश्चात् सभी को सरल लगने लगता है।

यह निश्चित है, कि मानव की भाषा का विकास आँख कान के साथ ज्ञान तंतुओं के विकास की प्रक्रिया ही है। इसके पश्चात् भाषा से मानव को ध्वनियाँ मिली हैं, तदनन्तर लिपि प्राप्त हुई है। जिस दिन से मानव ने अपनी ध्वनियों को चित्रों आदि के प्रयोगों के साथ विकसित करते हुये अक्षरों का रूप प्रदान किया था, उसी दिन से भाषा को वास्तविक अस्तित्व प्राप्त हुआ था। सुस्पष्ट है, कि भाषा मानव के विकास की सर्वप्रथम कडी है।

इसके पश्चात् वह धीरे-धीरे अन्य शाखा-प्रशाखाओं की ओर अग्रसर हुआ है। जिस दिन उसने भाषा को ध्वनियों को लिपि में बाँधना सीखा, उसी दिन से अपने विकास के नूतन-पथ की ओर बढ़ा है। अतः यह कहना चाहूँगा, कि मानव के विकास की कथा आँख-कान के सहारे ज्ञान ततुओं के सजग होने की प्रक्रिया से अधिक सम्बन्धित रही है। मानव का विकास केवल भाषा और हाथों से नहीं हुआ है वरन् भाषा के विकास में रहे सहोदर आँख-कान के बाद में ये महत्त्वपूर्ण रह हैं। हाथ तो केवल ज्ञान तंतुओ को आँख कान द्वारा किये गये संकेतों को मूर्त रूप देने भर का कार्य करते रहे हैं। यह है, भाषा, ध्वनि, लिपि का सम्बन्ध, जो सामान्य शब्दों में मैंने सुस्पष्ट करने का प्रयत्न किया। हाथ केवल श्रम द्वारा मूर्त्त रूप प्रदान करता है, सभ्यता का विकास तो देख, सुन और समझने की प्रक्रिया का स्वरूप है। एवं इसका मूल है, भाषा।

---

२. भाषाओं का अध्ययन एवं संस्कृत

भारोपीय परिवार की प्राचीन भाषाओं में संस्कृत भाषा का अभूतपूर्व महत्व विद्वानों ने स्वीकृत किया है । यहाँ हम अत्यन्त सक्षिप्त रूप में विचार करते हैं ।

जिस समय हम भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के उद्भव तथा विकास की ओर दृष्टि डालते हैं, तो ज्ञात होता है, की सिंघु घाटी की सभ्यता के माध्यम से प्राप्त सिक्कों एवं अन्य सामग्रियों पर जिस प्रकार के चिन्ह अंकित हैं, निश्चित रूप से उस समय के व्यक्तियों की भाषा व लिपि रही है । आज उस लिपि को समझने में कठिनाई जा रही है । इसी लिपि एवं भाषा का विकसित रूप आगे चलकर सुसंस्कृत हुआ है । फिर भी यह निश्चित नहीं किया जा सका है कि संस्कृत उसी लिपि भाषा का विकसित रूप है । जिस समय हम संस्कृत के ज्ञात विकास से इसकी गणना करते हैं, तो समझ में आता है, कि संस्कृत का विकास आर्यों के आगमन के साथ-साथ ही प्रारंभ हुआ होगा । यही कारण है, कि उसका परिनिष्ठित स्वरूप ऋग्वेद के रूप में हमें प्राप्य है । चाहे जो हो, यह तो स्वीकार करना ही होगा, कि ऋग्वेद के सदृश्य भाषा का रूप बनने के लिए लम्बे युग की आवश्यकता होती है । अब यहाँ संक्षेप में आर्यों का आगमन एवं उससे पूर्व की स्थिति की चर्चा कर लेते हैं ।

यह मानकर अपना मत देता हूं, कि आज से सौ-दो सौ करोड वर्ष पूर्व विश्व की स्थिति सर्वथा भिन्न थी । विश्व का बहुत बडा भू भाग एक दूसरे से मिला हुआ था, एवं मानव धीरे-धीरे यहाँ वहाँ बसते तथा फैलते चला गया । सिंधु घाटी की सभ्यता आर्यों के आगमन के पूर्व ही विकसित हो चुकी थी । इन दोनों सभ्यताओं की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता ग्रामों से होती हुई नगरों के विकास तक पहुंच चुकी थी । आर्य सभ्यता पशु-पालन तथा ग्रामों तक ही सीमित थी । यह प्रकृति का नियम रहा है, कि जहाँ व्यक्ति को आराम मिलने लग जाता है, वह दूसरी ओर से निश्चित भी हो जाता है, तथा रहने भी लगता है । सिन्धु घाटी के मानव इस स्थिति तक पहुंच चुके थे । वे बडे एवं विशाल पैमाने पर नगरों का निर्माण करनें में सिद्धहस्त हो चुके थे । इसके

प्रत्यक्ष प्रमाण हरप्पा, मोहनजोदडो, लोथल आदि नगरों के निर्माण में हैं। आर्यों का जीवन उस समय ग्रामों को बसाना तथा पशु-पालन के साथ छोटी-मोटी खेती करना भर रहा होगा। परिणामत: जब उन्होंने भारत में प्रवेश किया होगा, तब सिन्धु घाटी के सभ्य लोगों को देखा होगा। बाद में संघर्षों के माध्यम से उन्हें तहस-नहस कर अपना अस्तित्व प्रत्स्थापित किया होगा। मेरा विश्वास है, कि उसी समय से आर्यों नें अपने पूर्व की जातियों तथा प्रजातियों की भाषा भी ग्रहण की होगी। यह उसी प्रकार स्वीकार किया होगा जिस प्रकार उनके शिवलिंग एवं देवी की पूज स्वीकार की। बाद में तो उन्हीं ने अनेक मौलिक अंतर लाने का प्रयास किया। इन्हीं तथ्यों के साथ जब हम अनेक परिवार की भाषाओं का अध्ययन करने की। ओर अग्रसर होते हैं, तो ऐसा ही ज्ञात होता है कि विश्व की लिपि-भाषाएँ प्राय: ध्वनियों के कम-अधिक अन्तर के माध्यम से मिलती जुलती ही हैं। यही नहीं, वरन् विश्व का मध्यभाग कम से कम एक ही आदिम जननी भाषा का केन्द्र अवश्य ही रहा है। यह मैं इस कारण कह सकता हूँ, कि केवल उत्तर के कुछ हिस्से छोड दिये जाय तो विश्व का मध्य भाग एक ही आदिम जननी भाषा से सम्बद्ध है। जो भी हो, यह तो स्वीकार करना ही होगा कि आर्यों ने अपने से अधिक सुसभ्य जातियों से अनेक ध्वनियाँ ग्रहण की होंगी। आगे चलकर धीरे-धीरे विकास हुआ होगा। अत: हम यहाँ यह कह सकते हैं, कि सस्कृत की आदिम जननी भाषा सिंधु घाटी के मानव की भाषा रही होगी, जिसके ध्वनिसमुहों को, जो कर्ण-प्रिय, तथा कार्य योग्य रहे होंगे, आर्यों ने जाने अनजाने में स्वीकार कर लिये होगें।

संस्कृत का विकास विश्व के भाषा शास्त्रियों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। वास्तव में इसके विकास में क्रमबद्धता है, एवं सुसंगठितता है। संस्कृत का विकास मेरी दृष्टि से चार खंडों में निरूपित किया जा सकता है। सर्वप्रथम खंड वह है, जो आदिम जननी भाषा के रूप में जहाँ से संस्कृत अव्यक्त दृष्टि से विकास पथ पर आयी है। यह स्वरूप आर्येत्तर भाषाओं का स्वरूप है। द्वितीय, संस्कृत का वैदिक स्वरूप है, तृतीय, सस्कृत का पाणिनीय स्वरूप है। चतुर्थ, संस्कृत का विकसित स्वरूप है जो आगे चलकर भारत के अनेक आधुनिक भाषाओं के विकास का बहुत कुछ आधार रहा है। संस्कृत का विकास चार खंडों में जिस रूप से निरूपित किया जा सकता है, वह स्पष्ट ढ़ंग से यह सिद्ध करता है, कि आज प्राचीनतम भाषा के रूप में संस्कृत ही सर्वाधिक रूप में सुसंगठित है। आदिम भारत-युरोपीय भाषा पर, विचार करते हुये बंगाल कि रायल एशियाटिक सोसायटी के समक्ष सर विलियम जोन्स ने यह घोषणा का थी "सस्कृत भाषा की संघटना अत्यधिक अद्भूत है, चाहे उसका मूल उद्गम कुछ भी रहा हो। यह

भाषा ग्रीक से भी अधिक पूर्ण, लेटिन से भी अधिक समृद्ध तथा दोनों से अधिक परिष्कृत है। इतना होते हुये भी यह उन दोनों से क्रियाओं के मूलरूपों (धातुओं) तथा व्याकरणिक रूपों की दृष्टि से घनिष्ठतया संबद्ध है। यह सब आकस्मिक नहीं हो सकता। .... यह भी कहा जा सकता है कि गॉथिक तथा केल्टिक भी, संस्कृत की समान-स्रोत हैं, तथा प्राचीन फारसी को भी इसी परिवार से जोडा जा सकता है" यह घोषणा सन् १७८६ में की गई थी।

डॉ० उदयनारायण तिवारी ने १९६२ में चर्चा के दौरान स्पष्ट किया था, कि अमेरिका में भाषा विज्ञान के लिए संस्कृत का ज्ञान अनिवार्य है। आज तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की ओर ध्यान देने पर सुस्पष्ट हो जाता है, कि वास्तव में सर विलियम जोन्स की घोषणा सही है। इन सभी बातों की ओर गौर किया जाय तो स्वीकृत करना होगा, कि संस्कृत का विकास उस आदिम भारत यूरोपीय भाषा के माध्यम से हुआ है, जो आर्यों ने सिन्धु घाटी की सभ्यता से संस्कृति के आदान प्रदान के रूप में जाने अनजाने में स्वीकृती कर ली थी। साथ ही भाषा वैज्ञानिकों ने यह भी स्वीकार कर लिया है, कि भाषा में निरन्तर परिवर्तन होते रहता है। यह ठीक है कि, यह परिवर्तन ५०० से १००० वर्षों के मध्य इतनी मन्द गति से होता है, कि जिसे सामान्य व्यक्ति नहीं समझ सकता। उस दृष्टि पर सहज ही में पहुंच सकते हैं, कि संस्कृत उसी आदिम भाषा का विकसित रूप है, जो ३००० वर्षों पूर्व सिन्धु घाटी-सभ्यता के समय प्रचलित थी। जो भी हो इस विवाद पर मैं अपना मन्तव्य यही पूर्ण करना चाहता हूं।

संस्कृत तथा अन्य प्राचीन भाषाएँ

मैंने हिन्दी और मराठी भाषा के शब्दों की तुलना करते हुये यह स्पष्ट किया था, कि इन भाषाओं के शब्दों में तनिक अन्तर निम्न चार कारणों से होता है:-

१) व्यंजनों में अन्तर। २) दीर्घ-ह्रस्व का अन्तर।

३) व्यंजनों में अनुस्वार का प्रयुक्त न होना। ४) कहीं कहीं व्यंजन की अधिकता।

परंतु जहाँ विभिन्न देशों की भाषाओं की तुलना का प्रश्न उपस्थित होता है, वहाँ उपर्युक्त नियम उतने महत्वपूर्ण न रहकर ध्वनि-समूह महत्व पूर्ण बन जाते हैं। प्राचीन भाषाओं के रूप में संस्कृत के समक्ष ग्रीक, लैटिन और अरबी को लिया जा सकता है। वास्तव में प्राचीन सभ्यता के क्षेत्र में ग्रीक, रोम, अरब सभ्यताओं का महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु यह तो भाषा वैज्ञानिकों ने स्वीकार कर

ही लिया है, कि संस्कृत प्राचीन भाषाओं में सर्वाधिक रूप में सुसंगठित एवं समृद्ध है। यहाँ हम ग्रीक, लैटिन और अरबी भाषाओं के कुछ शब्दों का तुलनात्मक स्वरूप प्रसिद्ध नियमों के साथ देते हैं।

ग्रिम का नियम

इस नियम का सम्बन्ध नियत रूप से देखे जानेवाले कुछ ऐसे वर्ण परिवर्तनों से है, जो भारत-यूरोपीय भाषा परिवार में एक ओर संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, लिथ आनियन, रूसी आदि भाषाओं में और दूसरी ओर जर्मेनिक या टयूनमिक भाषाओं से सम्बन्ध रखनेवाली गाथिक तथा निम्न जर्मन भाषाओ में पाये जाते हैं। संस्कृत प् और त् क्रमश: F, th

संस्कृत आदि में	P. T. K.	B. D G.	Bh. Dh. Gh
अंग्रेजी आदि में	F. Th H.	P. T. K.	B. D. G.

जर्मेनिक भाषाओं का प्रथम वर्ण परिवर्तन

ग्रिम नियम के अनुसार निम्न प्रकार की सादृश्यता स्पष्ट हुयी है।

ग्रिम नियम

संस्कृत	लैटिन	ग्रीक	फ्रेंच	जर्मन	अंग्रेजी
शतम्	Centum	he-kat'on	cent	Hundrer	hundred
दश	decem	de'ka	dix	Zehu	Ten
पितृ	Pater	Pate'r	Pe're	Vater	Father
मातृ	Be'ter	Bate'r	Fre're	Bruder	brother
अस्ति	est	e'sti	est	ist	is
त्रि	Tre's	treis	treiz	tris	three
हंस	duser	chen		Gans	goose

ग्रिम-नियम सभी शब्दों के लिए पूर्णत: लागू नहीं हो सका। अत: निम्न दो नियम भी स्वीकृत किये गये। उनका संक्षिप्त परिचय यों हैं :-

(२) ग्रासमन-नियम

यह कल्पना की जा सकती है कि भारत यूरोपीय मूल भाषा की अवस्था में संस्कृत "बुध" तथा "दम्" धातुओं में प्रारंभ के वर्ण सोष्म स्पर्श 'भ्', 'ध्' रहे होंगे।

(२) वेर्नर का नियम

कार्ल वेर्नर–भारत- यूरोपीय मूल-भाषा के शब्दों के K, T, P के स्थान में ग्रिम महाशय के नियम के अनुसार वर्ण परिवर्तन (h, th, f,) तभी होता है जब उस मूल भाषा में उससे अव्यवहित पूर्व में कोई उदात्त स्वर रहता है। स्वर के पश्चात् आने पर उनके स्थान में g, d, b हो जाते हैं।

यह है, संस्कृत का संक्षिप्त परिचय एवं भाषाविज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र में उसके महत्त्व की जानकारी।

---

३. भारतीय आर्य भाषाएँ

मैंने संस्कृत भाषा पर विचार करते समय यह मत दिया है, कि भाषा के उद्गम के समय समस्त भूमंडल की भाषा एक ही रही है। यहाँ पर भारतीय आर्य भाषाओं के सम्बन्ध में संक्षिप्त ढंग से विचार करता हूँ। इसके बाद हिन्दी-भाषा पर विचार करते समय हिन्दी की लिपि और ध्वनियों पर विचार करेंगे अन्य भारतीय भाषाओं में ध्वनियों की दृष्टि से कितना और कहाँ अन्तर आ गया है, इसी सम्बन्ध में विचार करना अभीष्ट मानकर चर्चा कर रहा हूँ।

भारतीय भाषाओं के विकास क्रम की ओर ध्यान दिया जाय तो, यह स्पष्ट हो जाता है, कि भारतीय आर्य भाषाओं का विकास, दसवीं शताब्दी के समय भारत में प्रचलित भाषाओं के परिवर्तित एवं विकसित रूप हैं। यहाँ संकेत करना अनुपयुक्त न होगा कि कुछ भारतीय भाषाओं में आज भी ऐसी ध्वनियाँ प्रचलित हैं, जो संस्कृत में कभी भी प्रचलित नहीं रही। उदाहरणार्थ "ळ" की ध्वनि। इसका कारण है, धीरे-धीरे ध्वनियों का परिवर्तन और विकास। परन्तु यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय भाषाओं के विकास में संस्कृत का योग नहीं है। वास्तव में तो भारतीय भाषाएँ संस्कृत से ही विकसित हुयी हैं, परन्तु ये भाषाएँ अपनी मूल बोलियों की भी कुछ ध्वनियों को विस्मृत नहीं कर सकी परिणामतः वे ध्वनियाँ आज भी उपलब्ध है एवं प्रचलित है। प्राचीन बोलियोंका विकसित स्वरूप संस्कृत रहा है, तथा संस्कृत से पालि एवं प्राकृतों का विकास हुआ है। पालि और प्राकृतों के विकास के समय स्थानीय कुछ मूल ध्वनियाँ उसी प्रकार व्यवहार में आती रही हैं, जिस प्रकार प्रारंभ मे थी। सुस्पष्ट है, कि संस्कृत का विकास सुसंस्कृत समाज के मध्य कुछ विशिष्टताओं व्याकरणिक, सभ्य शब्दावली, उच्च माननीयता एवं सुसंस्कृतता का प्रचार के साथ हुआ एवं बाद में संस्कृत से विद्रोह करने के अर्थ में मूल ध्वनियाँ पालि एवं प्राकृत भाषाओं में विद्यमान रही हैं। इस सम्बन्ध में यहाँ इतनी ही चर्चा पर्याप्त है। वास्तव में मैं यहाँ भारत में आधुनिक प्रचलित भाषाओं पर ही विचार करना चाहता हूँ।

भारतीय भाषाओं का जहाँ तक प्रश्न है, सभी भाषाएँ आर्य परिवार से सम्बन्धित नही हैं। दक्षिण भारत की तेलगु, तामिल, मलयालम आदि भाषाएँ आर्य परिवार में नहीं आती। भारतीय आर्य भाषाओं के अन्तर्गत हम निम्न भारतीय भाषाओं को ले सकते हैं। इन भाषाओं के दो खंड किये गये हैं। एक खंड, मध्यदेश के नाम से अभिहित है, दूसरा खंड मध्यदेश के चारों ओर फैला हुआ प्रदेश है। क्रमश: संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

मध्यदेश की भाषाएँ एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक फैली हुयी हैं। इनके तीन खंड किये गये हैं, पश्चिमी भाग, मध्य भाग, पूर्वी भाग। इन खंडों या भागों की भाषाओं को हम हिन्दी वर्ग में लेते हैं। इस प्रकार हिन्दी वर्ग में राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी एवं मध्य पहाडी आती हैं। इस खड में कुछ पहाडी भाग आता है, पहाडी भाग में बोली जानेवाली भाषा को मध्य पहाडी नाम दिया गया है। मध्य पहाडी भाग की भाषाओं की पृथक् गणना इसलिए आवश्यक है, कि वहाँ कि बोली, पहाडी भाग होने के कारण कुछ भिन्नता लिये है। जब हम दूसरे वर्ग की ओर ध्यान देते हैं, तो स्पष्ट होता है, कि राजस्थान के पास सिन्ध में सिन्धी बोली जाती है। पंजाब में पंजाबी, गुजरात में गुजराती, महाराष्ट्र में मराठी, उडीसा में उडिया, बंगाल में बंगला, असम में असमी या असमिया बोली जाती हैं। ये ही बोलियाँ इन प्रदेशों की भाषाएँ हैं। इनका यहाँ संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है।

सिन्धी–सिन्ध प्रांत की भाषा सिन्धी है। इस समय सिन्ध-कराची पाकिस्तान के अन्तर्गत है। सिन्ध राजस्थान, पंजाब और बलूचिस्तान की सीमाओं से लगा हुआ है। गुजरात भी सीमा के पास ही है। इस प्रकार सिन्ध की भाषा सिन्धी पर इन सब सीमावर्ती प्रदेशों का प्रभाव स्वाभाविक ही है। सिन्ध की राजकीय स्थिती पर दृष्टिपात किया जाय तो स्पष्ट होता है कि आठवीं शताब्दी से सिंधी और मुलतान एक ही प्रांत रहा है। मुलतान मे लहँदी भाषा प्रचलित है। १८४३ से १९३६ तक सिन्ध बम्बई प्रांत का एक भाग रहा है। वैसे सिंधी के तीन भाग माने जाते हैं। शीर्ष, मध्य और नीचे का हिस्सा, यहाँ क्रमश: सिराकी, विचोली और लाडी बोलियाँ हैं। इसमें विचोली सिन्ध की साहित्यिक एवं सामान्य भाषा रही है। सिंधी भाषा का साहित्य अधिक समृद्ध नहीं है, परन्तु साहित्य अवश्य उपलब्ध है, गद्य-पद्य दोनों में। सिन्धी सूफियों के दोहे कबीर आदि की साखियों, दोहों के सामान प्रसिद्ध हैं। शाह लतीफ का 'रिसालों' बहुत ही लोकप्रिय काव्य रहा है। सिंधी पहले देवनागरी और गुरूमुखी लिपि में लिखी जाती थी। १८५३ से इसकी अपनी लिपि प्रचार में आयी है। यह लिपि अरबी के आधार पर बनी है।

सिंधी के सब शब्द स्वरांत होते हैं। व्यंजन में कुछ विशिष्ट ध्वनियाँ पाई जाती हैं तथा ग, ज, ड, ब, हैं। इनके उच्चारण कण्ठपिटक बन्द करके द्वित्व रूप में होते हैं। महाप्राण की ध्वनियाँ लहँदी के समान हैं। सिंधी को पुलिंग संज्ञाएँ प्रायः उकारान्त एवं ओकारान्त और स्त्रीलिंग संज्ञाएँ अकारान्त एवं आकारान्त होती हैं। लिंग एवं वचन दो हैं हिन्दी के समान। कर्म में 'के' और अधिकरण कारक में 'माँ' का अवधी से साम्य है। सर्वनाम हिन्दी से भिन्न हैं। संज्ञार्थक क्रिया-णुकारान्त हैं। जैसे-हलनु (चलना) पिटणु (पिटना)। भूतकालिक 'ल' मराठी और पूर्वी भाषाओं से तथा वर्तमान कालिक "द" पंजाबी से मिलता है। सिंधी की संज्ञाओं और क्रियाओं में सार्वनामिक प्रत्ययों का योग-जैसे पुट्रऊँ (हमारा बेटा), मारिआई (उसने उसको मारा)। सिंधी के शब्द भंडार में अरबी फारसी शब्दों की अधिकता है।

पंजाबी–पंजाब के इस समय दो भाग हैं। भारतीय क्षेत्र का पंजाब और पाकिस्तानी क्षेत्र का पंजाब। भारतीय क्षेत्र के पंजाब की बोली एवं भाषा को ही पंजाबी कहते हैं। इसका क्षेत्र अम्बाला से लाहौर तक और जम्मू-चम्बा शिमला से भटिंडा तक फैला हुआ है। इस प्रकार पंजाबी का क्षेत्र पूर्व से पश्चिम तक मध्य पंजाब और उत्तर में हिमांचल और जम्मू से लेकर दक्षिण में सिंधी और राजस्थानी भाषा की सीमा तक फैला हुआ है। इसकी बोलियों में जम्मू–कांगडा की डोगरी, पटियाला एवं उसके आसपास की मालवई, लुधियाना के पूर्वी क्षेत्र की पोवाधी एवं लाहौर अमृतसर की माझी बोलियों महत्वपूर्ण हैं। माझी आधुनिक पंजाबी साहित्य की महत्वपूर्ण एवं आदर्श भाषा है। आधुनिक समय की तुलना में पूर्व का साहित्य बहुत कम है।

पंजाबी में हिन्दी की सघोष महाप्राण ध्वनियों का उच्चारण क्रमशः क्ह, च्ह, ट्ह, त्ह, प्ह, होता है एवं 'ह' में निम्न आरोही ध्वनि या तान रहती है। संयुक्त व्यंजनों को स्वरभक्ति-सहित बोलने की प्रवृति अधिक है। क्रोध, मित्र, धर्म, प्रेम आदि को पंजाबी में करोध, मित्तर, धरम, परेम बोलते हैं। संस्कृत के संयुक्त व्यंजन या प्राकृत के द्विज व्यंजन अम्बाला से पूर्व के प्रदेशों की भाषा में ह्रस्व रहो गये हैं और आदि अक्षर का स्वर दीर्घ हो गया है। संज्ञा में लिंग भेद और स्त्री प्रत्ययों की व्यवस्था हिन्दी के सदृश्य है-अन्तर केवल 'इन' प्रत्यय के बदले 'अन' प्रत्यय लगता है। बहुवचन स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अन्त में 'आँ' लगता है। परसर्गों में हिन्दी को के, के लिए दा, दे, दी और 'में' के लिए 'विच' प्रयुक्त होता है। क्रिया में वर्तमान कृदन्त का रूप ता, ते, ती से संपन्न न होकर दा, दे, दी से होता है जैसे करदा, करदे, करदी। पंजाबी स्त्रीलिंग बहुवचन में भी

कृदन्तीय रूप बदलते हैं जैसे फरदियाँ हैन (करती हैं) आदि। पंजाबी गुरुमुखी लिपि में लिखी जाती है। इसका विकास सिखों के दूसरे गुरू अंगद ने सुधार करके कुछ देवनागरी मात्राओं को जोड कर किया था।

गुजराती–गजरात प्रांत की भाषा गुजराती है। गुजरात, राजस्थान' महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश की सीमा से लगा हुआ है। बम्बई पास में ही है। इस प्रकार बम्बई पर भी गुजरात का प्रभाव है, एवं वहाँ अधिक लोग गुजराती बोलते हैं। इसके उत्तर पूर्व में सिंध और राजस्थान होने से सिंधी और राजस्थानी भाषा आती है। दक्षिण मे महाराष्ट्र की भाषा मराठी करीब में हैं। इसकी क्षेत्रीय बोलियाँ हैं, परन्तु विशेष महत्वपूर्ण नहीं हैं। वैसे पश्चिम में काठियावाड की काठियावाडी उल्लेखनीय है। अहमदाबाद और उसके आस-पास की बोली ने ही साहित्यिक रूप धारण किया है; तथा वह सामान्य भाषा है। यह सारे प्रदेश में एक रूप से बोली और समझी जाती है। नागरिक और ग्रमीण गुजराती में अन्तर है। गुजराती का साहित्य बहुत समृद्ध है। प्राचीन काल में आचार्य हेमचन्द ने महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। मध्य काल में नरसी मेहता को भक्ति वाणी की गूंज रही है। आधुनिक काल में तो गुजराती ने साहित्य की अनेक विधाओं में आशातीत उन्नति की है। गुजराती भाषा सत्रहवीं शताब्दीं तक देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती थी। इस समह गुजराती की अपनी लिपि है, यह लिपि पूर्वी केथी से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

गुजराती में हिन्दी सदृश्य संस्कृत-प्राकृत के संयुक्त अथवा द्वित्त व्यंजन का न्हस्व व्यंजन होकर उससे पूर्व स्वर का क्षतिपूरक दीर्घीकरण होता है जैसे पीढ (पृष्ठ माखण। बोलचाल की गुजराती में क ख ग का 'च' 'छ' 'ज,' जैसे लाग्यो· का"लाज्यो" च छ का 'स' ऊँचो का 'ऊँसो. स का ह 'सूरज' का "हूरज" 'सों का हो, और हूं का 'ऊ' हो जाता है जैसे हूं का ऊ, 'हूतो' का "ऊतो"। दन्त्य और मूर्धन्य व्यजन परस्पर परिवर्तित हो जाते हैं जैसे थोरो, का थोडो दीढोका डीढो आदि। गुजराती में ळ, ण, ओष्ठय व और श सुरक्षित हैं। वचन दो हैं, लिग तीन हैं। नपुंसकलिग का ऊँ रूप उभयलिग है। संज्ञा के तिर्यक रूप राजस्थानी और बुंदेली की तरह होते हैं। परसर्गो में नो ना नी, का के की और माते उल्लेखनीय हैं। वर्तमान हूँ (मैं) अमें (हम) तूं (तू। आदि हिन्दी बोलियों में भी पाये जाते हैं। विशेषणों का व्यवहार मामान्यतः हिन्दी के समान होता है। कर्मवाच्य, संयुक्त क्रिया तथा प्रेरणार्थंक क्रिया की बनावट बहुत कुछ हिन्दी के सदृश्य ही है, सहायक किया छुं, छे, हती, हतो, राजस्थानी हिन्दी से मिलती जुलती हैं। संज्ञार्थक क्रिया में 'वुं' रूप प्रचलित है और क्रिया का भविष्यत् काल श रूप होता है। जैसे करीश, करशो आदि।

मराठी-महाराष्ट्र प्रदेश की भाषा मराठी है। महाराष्ट्र भी अन्य प्रदेशों के सदृश्य हिन्दी, गुजराती, तेलगु, आदि भाषी प्रदेशों की सीमा से लगा हुआ है। महाराष्ट्र में प्रमुख खंड बम्बई, पुना, बरार और नागपुर हैं। इन प्रदेशों की बोलियों में सीमावर्ती प्रदेशों के कारण कुछ भिन्नता आ गयी है। प्रमुख बोलियों के रूप में खडी मराठी बोली (पूना की) बरारी-(इसके दो भाग हैं-१ वैदर्भी २) नागपुरी) और कोंकणी। कोंकणी पर द्रविड परिवार की भाषाओं का प्रभाव है। पूना की खडी मराठी बोली ही साहित्यिक भाषा है। दक्षिण महाराष्ट्र में महत्त्व है। हळवी बोली का मराठी का विकास है। करीब-करीब हिन्दी के विकास के समकालीन ही माना जा सकता है। मराठी में महानुभाव पंथ के अनेक ग्रथ हैं, तथा ज्ञानदेव जैसे प्रसिद्ध कवि की रचनाएँ हैं में मराठी साहित्य भी बहुत ही समृद्ध है। मराठी की लिपि देवनागरी है, इसे मराठी में ,बालबोध' कहते हैं, परन्तु नित्य के व्यवहार में एक विशिष्ट लिपि प्रचलित है, जिसे मोडी कहते हैं।

मराठी में वचन हिन्दी के समान दो हैं। परन्तु लिंग संस्कृत के आधार पर तीन हैं। मराठी का लिंग भेद विचित्र है। हिन्दी में व्यक्ति को पुलिंग कहते हैं। तो मराठी में स्त्रीलिंग सदृश्य प्रयुक्त होता है। प्राय: आकारान्त संज्ञाएँ पुल्लिग, ईकारान्त स्त्रीलिंग और सानुनासिक एकारान्त संज्ञाएँ नपूंसकलिंग होती है। संज्ञा के अनेक विभक्ति रूप अब भी अवशिष्ट हैं. विशेषत: कर्म में जैसे–बापास (पिताको) परसर्गों में करण ने, शी, सम्प्रदाय ला, ते, अपादान ऊन हून और सम्बन्ध चा उल्लेखनीय है। क्रिया में वर्तमान काल के त-रूप हिन्दी से, भूतकालिक ल-रूप पूर्वी भाषाओं से और भविष्यत 'ल' रूप राजस्थानी से मेल खाते हैं: क्रियार्थक संज्ञा के अर्थ मे णें होता है। पूर्वकालिक क्रिया उठून, आदि होती हैं– गुजराती की करीने के सदृश्य। कर्मवाच्य प्राकृत रूप में पाहिजे (चाहिये) आदि हैं। सर्वनाम को हिन्दी का जानकार सरलता से पहचान सकता है। वैसे मराठी के अनेक अव्यय और परसर्गीय शब्द अजीब है। आज संधि का अजीब ढंग मराठी में चल पडा है।

उडिया-उडिसा या ओडीसा प्रांत की भाषा उडिया है। ओडीसा नाम ओड जाति के आधार पर पडा है। उडिसा का नाम सम्राट अशोक के समय कलिंग था। बाद में उसका नाम उत्कल भी रहा। इसी कारण यहाँ की भाषा को ओडी और उत्कली भी कहते हैं। बंगाल इसकी सीमा से लगा हुआ है। बँगला से उडिया बहुत अधिक मिलती जुलती है। उडिया की एक बोली है, भत्री, जो उडिया, मराठी और तेलगु का सम्मिलित रूप है। बहुत दिनों तक उडीसा पर

तेलंगों और मराठों का राज्य रहा। परिणामत: सामान्य भाषा में भी तेलगू और मराठी शब्द तथा प्रयोग का प्रभाव परिलक्षित होता है। उडिया में प्राचीन काल से कृष्ण साहित्य मिलता है। उडिया की लिपि देवनागरी है, परन्तु ताड पत्तों पर लिखी जाने के कारण वर्णों में ऊपर और बायें गोलाई रहती है। द, ढ और ह नागरी से भिन्न हैं।

उडिया की उच्चारण सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने से ज्ञात होता है कि यह बंगला से बहुत मिलती जुलती है। अनय अ का उच्चारण अ की वृत्ताकारता य व का क्रमश: ज ब, और बहुधा संयुक्त व्यंजनों का द्वित बंगला से भिन्न ॠ का स, श का स (दन्तमूलीय), ण, ळ, और क ट प मे थोडी महाप्राणता उल्लेखनीय है। व्याकरणगत लिंग नही है, केवल स्वाभाविक लिंग है। बहुवचन बनाने के लिए मन, अथवा, लोक, गण, आदि शब्द जोडे ज ते हैं। कभो कभी दोहरे बहुवचन रूप मिलते हैं. जैसे पिललोक मन (बच्चे लोग) संज्ञा का साधारण रूप माणुस और लघुरूप माणुसवा पूर्वी हिन्दी से मिलता है। करण, अपादान, और अधिकरण में क्रमश: ए - उ और ए विभक्ति चिह्न प्रयुक्त होते हैं। परसर्गों में कर्मसम्प्रदान का, कु, के; करण का, रे; उत्पादान का अ नु; सम्बन्ध का र, न, अधिकरण रे ने हैं। इसी तरह की सरलता सर्वनामों में है मुं, तु, से वह) हे ए (यह) जे, के, आपण। सादृश्य के नियम से और स्वर सामंजस्य द्वारा अधिकांश रूप सम्पन्न हुये हैं। क्रियापदों में भूतकालिक क (करिल, करिलू) भविष्यत् ब-करिरिब, करिबु और वर्तमान करह कप आदि-आदि बनते हैं। पूर्वकालिक कृदन्त करि, छडि वर्तमान कृदन्त रहते हैं। आज्ञार्थ और णि जन्स रूप बंगला और हिन्दी से मिलते हैं।

बंगला-पंजाब की तरह इस समय बंगाल के भी दो भाग हो गये हैं। पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल। पश्चिमी बंगाल भारतीय क्षेत्र के अंतर्गत हैं। इस कारण बंगला भारत में प्रचलित है। इसकी दो प्रमुख विभाषएँ हैं। पूर्वी बंगला का केन्द्र ढाका है और पश्चिमी बंगला का केन्द्र कलकत्ता है। वास्तव में कलकत्ता की बोली हो टकसाली मानी जाती है। बंगला साहित्य अधिक प्राचीन नहीं और न ही प्राचीन साहित्य है भी। परन्तु आधुनिक युग में बंगला साहित्यिक ने अत्यधिक उन्नति की है। भारतीय भाषाओं में साहित्यिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। बंगला साहित्य पर संस्कृत क प्रभाव तो पडा ही है साथ ही अंग्रेजी से भी अधिक प्रभावित रहा है। साहित्यिक बंगला में संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता है। बंगला क लिपि पृथक् है, परन्तु देवनागरी की सहोदरा है।

बंगला में 'अ' का उच्चारण ह्रस्व 'ओ' की तरह होता है। अक्षर के अंत वाला स्वर उच्चरित होता है और प्रत्येक शब्द स्वरांत होता है। 'य' का 'ज' और 'व' का 'बे' बोला जाता है। 'ण' का 'न' और 'ष, 'स' का 'श' बोला जाता है। ये ध्वनियां शुद्ध तत्सम रूप में लिखी जाती हैं, किन्तु शिष्ट और शिक्षित वर्ग में भी इनका उच्चारण तद्भव रूप में ही होता है। संयुक्त व्यंजन भी लिखे जाते हैं, किन्तु 'श' और रेफायुक्त संयोगों को छोड़कर सब द्वित्व और तद्भव रूप में उच्चरित होते हैं। बंगला में व्याकरणगत निजी विशेषता है। इसमें विशेषण और क्रियाएँ लिंगानुसार नहीं बदलतीं। वचन दो ही हैं। बहुवचन के लिए-श, दिग्, गुलि (लोग), सब, गण, आदि जुड़ते हैं। कर्म और सम्प्रदान में के, जन्य, अपादान में थेके हइते, करण में ते, दिया आदि परसर्ग लगते हैं। कुछ अंशों में बंगला अभी भी योगात्मक भाषा है। सम्बन्ध कारक में राजस्थानी की तरह ए विभक्ति और अधिकरण में संस्कृत का-एर। जैसे आमरा, घरेर। सर्वनामों में आदि, की (क्या) और केह हिन्दी से भिन्न हैं। शेष सर्वनाम सरल हैं। विशेषण प्रायः आकारान्त नहीं होते जैसे छोट, खोट आदि। बंगला क्रिया में ल-भूतकालिक और ब-भविष्यत रूप होता है। प्रेरणार्थक क्रिया, कर्मवाच्य और संयुक्त क्रिया हिन्दी की तरह होती हैं। वाक्य योजन में प्रायः क्रिया विशेषण तथा विधेयक विशेषण अन्त में आते हैं। संस्कृत की तरह 'है' का प्रायः लोप रहता है।

असमी-बंगाल से लगा हुआ प्रांत है, जिसे आजकल असम कहते हैं। यहाँ की भाषा असमी है। इसका रामायण काल में प्राग्ज्योतिष नाम था। इसके ही दक्षिण भाग को कामरूप कहते थे। तेरहवीं शताब्दी में थाई यां शान जाति के 'अहोम' लोग यहाँ आ बसे थे, जिनके नाम पर इस प्रदेश का नाम अहम या असम पड़ा। आर्यभाषा असमी सारे असम की भाषा नहीं है। केवल दक्षिणी भाग-लखीमपुर से गोलपारा तक के प्रदेश की भाषा है। बोलियाँ नहीं के बराबर हैं। सर्वत्र भाषा का रूप एक ही सा है। लिपि का जहाँ तक प्रश्न है, पहले कई लिपियाँ प्रचलित थीं। श्रीरामपुर में मुद्रणालय प्रारंभ होने के पश्चात् बंगला लिपि में थोड़ा संशोधन कर अपनायी गयी है। केवल दो तीन अक्षर बंगला लिपि से भिन्न हैं। देवनागरी का भी प्रयोग होता है। बंगला और असमी में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

बंगला की तुलना में असमी में च, छ का स, और स का ह या ख होता है। संयुक्त व्यंजनों में स स्पष्ट है जैसे स्वार्थ=सार्थ। संयुक्त व्यंजनों का द्वित्व अ का ओ, य, व का ज, ब; ण का न बंगला के सदृश्य है। मूर्धन्य ध्वनियों की मूर्धन्यता निर्बल होती है और फलतः ट ड का उच्चारण त द के सदृश्य

ज्ञात होता है । ड़ ढ़ का ऱ् रह् और ज का ज़ बोला जाता है । असमी में केवल ह्रस्व ए है, ओं नहीं । ह्रस्व अ, इ, उ एवं दीर्घ आ, ई, उ का उच्चारण अनिश्चित है । संज्ञा और सर्वनाम के परसर्ग–कर्म में क, करण में ए एरे; सम्प्रदान में लै, लैके; सम्बन्ध में–अर, अरे अधिकरण में अत, अते रूप होते हैं । असमी बंगला से कुछ अधिक विश्लेषणात्मक है । विशेष अन्तर क्रियाओं में हैं, न लिंग का भेद है, न वचन का भेद । जैसे मइ, खा, इशो । भूतकाल ल रूप; भविष्यत–ब–रूप, वर्तमान खाऊँ, खोवा, खाय होता है । नकारात्मक क्रिया का रूप नि, न पहले जोड़ देने से बन जाता है । संज्ञार्थक क्रिया के अनेक रूप हैं, जैसे बोला, बोलिबा । कर्मवाच्य है से बनता है (हिन्दी की तरह जा के संयोग से नहीं ।), जैसे दिया है शे ।

हिन्दी एवं उससे सम्बन्धित क्षेत्र की भाषाएँ–भारतीय आर्य भाषाओं में हिन्दी का क्षेत्र सर्वाधिक विस्तृत है । इसकी उपभाषाएँ भी हैं, जिनको हम पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं । वे इस प्रकार हैं—पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी हिन्दी और पहाड़ी हिन्दी । हिन्दी साहित्य के इतिहास की जिस समय हम चर्चा करते हैं, तो वीरगाथा काल से क्रम प्रारम्भ होकर आधुनिक युग तक का समय समाहित कर लिया जाता है । इस विस्तृत समय की रचनाओं के विकास और साहित्यिक परंपराओं को ध्यान में लाने से सुस्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त पाँच भाषाओं के विकसित रूप को ही आगे चलकर हिन्दी नाम दिया गया है । क्षेत्रफल का विचार किया जाय तो १०५० मील लम्बे और लगभग ६०० मील चौडे भाग को हिन्दी प्रदेश की संज्ञा दी जा सकती है, जिसकी इस समय जनसंख्या २३ करोड़ के लगभग है । हिन्दी के सम्बन्ध में हम पृथक रूप से चर्चा कर रहे हैं । उसकी भाषाओं की चर्चा की विशेष आवश्यकता इस समय नहीं है। उस पर भी अलग से विचार किया गया है ।

हिन्दी तर अन्य भारतीय आर्य भाषाओं के संक्षिप्त परिचय से कुछ तथ्य हमारे सामने आते हैं, जिसे निम्न तालिका के आधार पर सुस्पष्ट कर सकते हैं :–

क्रमांक	भाषा	लिपि	ध्वनि तत्व : व्याकरणीय आधार	साहित्य	शब्द भंडार
(१)	सिन्धी	अ) पहले देवनागरी और गुरुमुखी का प्रयोग होता था। ब) अब स्वतंत्र लिपि, अरबी लिपि के आधार पर।	अ) शब्द स्वरांत ब) ग, ज, ड, ब विशिष्ट ध्वनियाँ। स) लिंग दो, वचन दो। ड) व्याकरणीय दृष्टि से अवधी, मराठी, पूर्वी और पंजाबी से साम्य।	अ) प्रारंभ में नहीं, ब) अभी गद्य–पद्य दोनों हैं। अठारहवीं शताब्दी के पश्चात् विशेष।	अ) अरबी फारसी शब्दों की बहुलता।
(२)	पंजाबी	अ) गुरुमुखी लिपि का प्रयोग। ब) बाद में देवनागरी मात्राओं को जोड़कर विकास किया।	अ) शब्दों के अन्त में अँ का प्रयोग। ब) लिंग और वचन हिन्दी के सदृश्य। स) स्वर भक्ति का प्रयोग, ध्वनि में। ड) सघोष महाप्राण ध्वनियाँ हिन्दी की तरह शुद्ध।	अ) प्रारंभ में विशेष साहित्य नहीं। ब) आधुनिक पंजाबी में समृद्ध साहित्य है।	अ) अरबी फारसी शब्द अधिक हैं। ब) हिन्दी के शब्दों के अधिक करीब।
(३)	गुजराती	अ) पहले देवनागरी लिपि में। ब) अब पूर्वी कैथी लिपि से मिलती जुलती नागरी सदृश्य।	अ) हिन्दी की तरह संस्कृत-प्राकृत के सयुक्त या द्वित्व व्यंजन का ह्रस्व। ब) दन्त्य और मूर्धन्य व्यंजन परस्पर परिवर्तित। स) ळ, ण, ओष्ठय व और श ध्वनियाँ, सुरक्षित। ड) वचन दो, लिंग तीन। इ) राजस्थानी, बुंदेली, हिन्दी के समान कुछ व्याकरणीय प्रयोग।	अ) प्रारंभ से समृद्ध ब) आधुनिक काल में सभी विधाओं में समृद्ध।	अ) हिन्दी, मराठी, संस्कृत शब्दों का प्रभाव। ब) प्राकृत अपभ्रंश प्रभाव भी।

(४)	मराठी	अ) देवनागरी लिपि । ब) व्यवहार में मोड़ी ।	अ) लिंग भेद विचित्र हैं । तीन हैं । वचन दो । ब) व्याकरणीय दृष्टि से हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती से साम्य । स) ळ, ऋ का रू, पदान्त न का ण आदि ध्वनियाँ, शुद्ध तालव्य एवं दन्त तालव्य उच्चारण विशेष ।	अ) प्रारंभ से समृद्ध ब) आधुनिक काल में सभी विधाओं में समृद्ध । स) हास्य एवं नाटक विशेष ।	अ)तत्सम, तद्भव, फारसी, द्रविड शब्दों की बहुलता ।
(५)	उड़िया	अ) देवनागरी लिपि से साम्य—वर्णों में गोलाई । ब) द, ढ, और ह नागरी से भिन्न ।	अ) लिंग नहीं, वचन दो । ब) बंगला से उच्चारण में समानता । स) व्याकरण की दृष्टि से पूर्वी हिन्दी, बंगला, से समानता ।	अ) प्राचीन काल में कृष्ण साहित्य । ब) आधुनिक साहित्य सामान्य है ।	अ) बंगला का प्रभाव । ब)हिन्दी, संस्कृत का प्रभाव
(६)	बंगला	अ) स्वतन्त्र लिपि है, देवनागरी की सहोदरा है ।	अ) वचन दो हैं । क्रियाएँ लिंगानुसार नहीं बदलतीं । ब) व्याकरणिक लिंगभेद नहीं हैं । स) राजस्थानी, हिन्दी, साम्य । ड) ह का प्रयोग नहीं होता ।	अ) प्राचीन काल में समृद्ध साहित्य नहीं । ब) आधुनिक काल का साहित्य बहुत समृद्ध है ।	अ) हिन्दी-संस्कृत शब्दों की बहुलता ब) तत्सम शब्द अधिक ।
(७)	असमी	अ) पहले कई लिपियाँ । ब) बाद में बंगला लिपि में थोड़ा सशोधन किया । स) देवनागरी का भी प्रयोग ।	अ) न लिंग भेद, न वचन भेद । ब) संयुक्त व्यंजनों में 'स' स्पष्ट है । स) मूर्धन्य ध्वनियों की मूर्धन्यता कम—ट ड का त द होता है । ड) क्रियाओं में विशेष अन्तर है ।	अ) रसायन और वैद्यक साहित्य प्राचीन काल से है । ब) आधुनिक युग में साहित्य समृद्ध है ।	अ) तत्सम, तद्भव शब्द । ब) संस्कृत और बंगला शब्द

सुस्पष्ट है, कि भारतीय आर्यभाषाएँ स्थान, समय के अनुसार ध्वनियों के अन्तर से कुछ हद तक भिन्न होती गयी हैं। अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि कई भाषाओं की लिपि में भी साम्य है। अधिकतर ध्वनियाँ देवनागरी से सम्बन्धित हैं। जब हम संस्कृत, लेटिन, ग्रीक को एक भाषा से विकसित स्वीकार करने को तत्पर हो रहे हैं, तब फिर भारतीय भाषाएँ एक ही मूल भाषा से विकसित हुई हैं, स्वीकार करना गलत नहीं है।

———
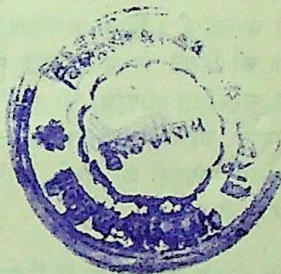
४. हिन्दी : साहित्यिक भाषाएँ एवं उपभाषाएँ

विकसित भारतीय आर्य भाषाओं की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो हमारे समक्ष हिन्दी प्रश्नार्थक चिन्ह के रूप में खड़ी हो जाती है। जिस समय हिन्दी भाषा के साहित्य का इतिहास के अध्ययन की ओर प्रेरित होते हैं, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी भाषा का साहित्य १००० ई० पू० से स्वीकार किया जाता है। क्रमशः डिंगल भाषा, अवधी, ब्रज भाषा के साहित्यिक रूप से हिन्दी-साहित्य पूरित है। भाषा-विज्ञान का अध्ययन यह तथ्य पुष्ट करता है कि जिस समय कोई बोली साहित्यिक रूप प्राप्त कर लेती है, तब वह भाषा के पद पर आसीन हो जाती है एवं "भाषा" संज्ञा से विभूषित हो जाती है। अतः मैं यहाँ यह कहना चाहता हूँ कि आज हम हिन्दी की चर्चा करते हैं, एवं जिसके साहित्य को समृद्ध एवं समुन्नत मानते हैं, वह डिंगल (राजस्थानी), ब्रज, अवधी भाषा के अपूर्व साहित्य से सम्बद्ध है। हिन्दी भाषी आज चंदबरदाई, तुलसी, सूर, कबीर, पृथ्वीराज आदि को हिन्दी के श्रेष्ठ कवि मानने में नहीं हिचकिचाता। अस्तु, हिन्दी एवं उससे सम्बंधित भाषाओं की चर्चा करते समय सम्बंधित भाषाओं को हिन्दी की उपभाषाएँ कहना कहाँ तक संगत है। इसी कारण मैं यहाँ हिन्दी एवं उससे सम्बंधित भाषाओं की चर्चा 'साहित्यिक भाषाएँ एवं हिन्दी' शीर्षक के अंतर्गत कर रहा हूँ।

राजस्थानी—भारत के पश्चिमी में स्थित राजस्थान प्रदेश की भाषा है। सिंध से इसकी सीमा लगी हुई है। उत्तर में पंजाब है। पूर्व में उत्तर प्रदेश है। दक्षिण में वर्तमान मध्यप्रदेश है। इस प्रदेश की भाषा के लिए 'राजस्थानी' संज्ञा प्रयुक्त की जाती है। राजस्थान की बोलियों पर विचार करते हुए डॉ० ग्रियर्सन ने विस्तृत रूप रेखा प्रस्तुत की थी। डॉ० एल्० टेसीतरी ने राजस्थानी का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने भारतीय आर्य भाषाओं पर विचार करते समय राजस्थानी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्राचीन राजस्थानी में उपलब्ध साहित्य को विद्वानों ने 'डिंगल' भाषा का साहित्य के नाम से अभिहित किया है।

राजस्थानी भाषा को, विद्वानों ने अध्ययन प्रस्तुत करते समय दो विभागों में विभक्त किया है ।

प्रथम, पश्चिमी राजस्थानी–इसके अन्तर्गत जैसलमेर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर जिलों के क्षेत्र को सम्मिलित किया है । भाषा में तनिक अन्तर मिलता है । जैसलमेर में चप्पल को चपलों कहते हैं, तो बीकानेर में चपलियों कहते हैं । जोधपुर में 'स' के बदले कहीं कहीं पर 'ह' का उच्चारण किया जाता है । फलोदी के पास 'साग' को 'हाग' कहते हैं । थोड़ा बहुत अन्तर उदयपुर आदि क्षेत्र की बोलियों में भी मिलता है । वैसे व्याकरण की दृष्टि से अधिक अन्तर नहीं है । कहीं-कहीं पर लिंग, वचन, क्रिया में अनुस्वार, मात्राओं का अन्तर स्पष्ट होता है ।

द्वितीय, पूर्वी राजस्थानी–इसके अन्तर्गत जयपुर, अजमेर, मेवाड़, किसनगढ़, कोटा, बूंदी का क्षेत्र सम्मिलित किया है । इन क्षेत्रों की भी बोलियाँ पश्चिमी क्षेत्र के सदृश्य थोड़ा बहुत अन्तर लिये हैं । मेवाड़ी पर गुजराती ध्वनियों का अधिक प्रभाव है । क्रिया के रूप में गुजराती सदस्य छे, छा, का प्रयोग मिलता है ।

राजस्थानी की विशिष्टताएँ--

(अ) राजस्थानी में मराठी सदृश्य ळ, ण का प्रयोग विशेष रूप से मिलता है । जैसे–थाळ, काळ, खेळ, घणों, जाणों आदि ।

(ब) शब्द के आरंभ तथा मध्य में घोष महाप्राण व्यंजन् का उच्चारण बदल जाता है ।

(स) शब्द के उच्चारण में 'इ' का प्रयोग होता है, कहीं लोप भी–जैसे हिरण-हरिण, दिन-दन आदि ।

(ड) राजस्थानी में संज्ञा, सर्वनाम आदि के प्रयोग में 'ओं' का अधिक प्रयोग होता है । जैसे–गायों, थोरों, म्होरों, औरों आदि ।

(इ) संज्ञा, सर्वनाम आदि में विभक्ति चिह्न और कारक चिह्नों का प्रयोग होता है–हूं (में)

(क) सम्वध कारक में रा, री, रो प्रत्यय लगता है–वेरो, वेरी, आदि ।

ऐसी छोटी-मोटी अनेक बाते हैं ।

खड़ी बोली–खड़ी बोली का सीमित क्षेत्र मेरठ और दिल्ली के आसपास का क्षेत्र ही है । परन्तु आजकल, मुरादाबाद, मेरठ, रामपुर, सहारनपुर आदि क्षेत्र सम्मिलित हैं । इसकी कुछ विशिष्टताएँ निम्न प्रकार से हैं–

(अ) ऐ, औ ध्वनियों का अभाव है । जैसे और–ओर, कौर–कोर ।

(ब) व्यंजनों में द्वित्व रूप अधिक मिलता है । जैसे रन्नी, धन्नी, पुच्छा, लच्छा ।

(स) संज्ञा, सर्वनाम, कृदन्त आदि रूपों में आधुनिक हिन्दी से कुछ अन्तर है । जैसे भला–भलो, मेरा–मेरो, मेरो आदि ।

(ड) संज्ञा के बहुवचन में ओ के बदले आं होता है । लड़कों–लड़कां आदि ।

ब्रजभाषा–ब्रजभाषा का भी क्षेत्र व्यापक है । यह भाषा मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर आदि क्षेत्र में बोली जाती है । केवल ब्रज प्रदेश की ही भाषा नहीं है, जो ८४ कोस की परिधि में फैला है ।

इसकी कुछ विशेषताएं यों हैं—

(क) ब्रज में कुछ व्यंजनों के बदले दूसरे व्यंजन उच्चरित होते हैं ।
व–ब, य–ज, ब–ष । जमुना–यमुना, आदि ।

(ख) संज्ञा, सर्वनाम, परसर्ग, तथा कृदन्त के अन्त का आ ध्वनि औ मिलती है ।
जैसे गया–गयौ, का–कौ, गला–गरौ आदि ।

(ग) बहुवचन, लिंग में कुछ अन्तर है–
लरिकन, गइयन, भइयन, कांटौ, आदि ।

(घ) सर्वनाम के रूप भी भिन्न हैं—
मैं–हौं, हम–मों, हमें–हमारौ, ते–तैं, वह–वौ (पु.) ब–वह (स्त्री.) ऐसे अनेक भिन्न रूप ब्रज में प्रचलित हैं ।

बुंदेली–बुंदेलखंड की प्रधान बोली है । इसका क्षेत्र जालौन, झांसी, ग्वालियर, ओरछा, सागर, हमीरपुर, बांदा, दमोह, नरसिंगपुर, सिवनी, जबलपुर, होशंगाबाद तक फैला हुआ है । परन्तु आज इन क्षेत्रों में कहीं-कहीं पर पूर्ण बुंदेली नहीं है ।

इसकी कुछ विशेषताएं यों हैं—

(अ) हिन्दी के य, व व्यंजन क्रमशः ज, ब हैं ।

(ब) इसमें अनुनासिकता का अधिकाधिक प्रयोग मिलता है ।
जैसे–हांत, पांव, मूं, जूं आदि ।

(स) बुंदेली में ओकारान्त का भी बाहुल्य है—
जैसे–बुरो, गरो, गयो, मेरो आदि ।

(ड) बुंदेली में भी ब्रज के सदृश्य बहुवचन मिलता है ।
गइयन, मोड़न, गोड़न आदि ।

(इ) सर्वनाम, क्रिया आदि के रूपों में भी थोड़ा अन्तर पाया जाता है ।

बांगरू–नाम बांगर प्रदेश से सम्बन्धित है । इसका क्षेत्र दिल्ली, रोहतक, हिसार, करनाल, पटियाला और झींद तक फैला है । इसकी कुछ विशेषताएँ यों हैं––

(अ) मूर्धन्य 'ण' का प्रयोग बहुत मिलता है ।
अपणा, होणा, पाणी आदि ।

(ब) मूर्धन्य 'ळ' का प्रयोग राजस्थानी के समान बहुल रूप में होता है । जैसे काळ, फळ, खेळ आदि ।

(स) 'ड़' ध्वनि का प्रयोग नहीं मिलता । 'ड़' के बदले 'ड' हो जाता है । जैसे–कपड़ा–कपडा, बड़ा–बडा, घड़ा–घडा आदि ।

(ड) सर्वनाम भी राजस्थानी से मिलते हुये हैं । जैसा–तन्ने, मन्ने, उन्ने आदि । ऐसे कई रूप परिवर्तन मिलते हैं ।

अवधी–अवध प्रांत के आधार पर अवधी नामकरण हुआ है । यह भाषा सामान्यतः अवध, लखीमपुर खीरी, सीतापुर, उन्नाव, रायबरेली, लखनऊ, बाराबंकी, प्रतापगढ़, सुलतानपुर, गोंडा, बहराइच आदि स्थानों में बोली जाती है । यह पूर्वी क्षेत्र की प्रमुख एवं प्रतिनिधि बोली है । इसकी कुछ विशिष्टताएँ इस प्रकार हैं :-

(अ) स्वरों में परिवर्तन मिलता है । जैसे सिआर, कउवा (कौआ); गइया (गैया), गुआल आदि ।

(ब) 'अ' और 'आ' के बाद 'इ' का उच्चारण होता है ।
जैसे–जाइत, खाइत आदि ।

(स) ए और ओ का उच्चारण बहुलता से मिलता है ।
जैसे–बेटवा, लोटवा, मटका आदि ।

(ड) संज्ञाओं में हिन्दी क्षेत्र से भिन्न तीन–तीव रूप मिलते हैं–
जैसे–घोड़, घोडवा, घोडौना, लरिका, लरिकवा, लरिकौना इत्यादि ।

(इ) सर्वनाम और विशेषण रूपों मे भी हृस्वान्त की बहुलता है ।
जैसे–बड़, थोर, मोर, तोर, हमार,

(ई) विशेषण में 'क' का बाहुल भी इसकी विशेषता है ।
जैसे बहुतक, कुछक, थोरक आदि ।
और भी बहुत से भिन्न रूप मिलते हैं ।

बघेली–बघेलखंड के आधार पर इसका नामकरण हुआ है । यह भाषा दमोह, मंडला, बालाघाट आदि जिलों में बोली जाती हैं । फतेहपुर, हमीरपुर, बांदा में बुंदेली का मिश्रित रूप मिलता है ।

कुछ विशेषताएँ यों हैं:-

(क) संज्ञा, सर्वनाम क्रिया आदि में ओ तथा ए ध्वनियों का वा और या में परिवर्तन मिलता है। जैसे-घोडा, घाडि, म्वार, ख्यात, ज्यहि आदि।

(ख) कर्ता 'ने' परसर्ग का अभाव है। का, कहा, से, तर, कर, आदि कारक चिह्नों का प्रयोग होता है।

(ग) सहायक क्रिया के रूप में है, हूँ, हैं, अहने का प्रयोग होता है। भूत में रहा, रहऊं भविष्य में होइ, होण्योऊँ।

(छ) सर्वनामों में एक वचन में मय, म्वहि, म्वार और बहुवचन में हम्ह, हम्हारे, हम्हार रूप मिलते हैं।

छत्तीसगढ़ी-रायपुर, बिलासपुर के तरफ का क्षेत्र छत्तीसगढ़ कहलाता है। इसी के आधार पर छत्तीसगढ़ी नाम पड़ा है। इसके अन्तर्गत रायपुर, बिलासपुर, कांकेर, राजनांदगांव, खैरागढ़, रामगढ़ का भाग आता है।

इसकी कतिपय विशेषताएँ ये हैं:-

(क) संज्ञा और सर्वनाम में ए, औ ध्वनियाँ क्रमश अइ और अऊ रूप मिलता है। बइल, जउन, तउन, कउन आदि।

(ख) शब्द के मध्य 'ड़' ध्वनि का लोप है। लड़का, लइका, मइका आदि।

(ग) कारकों में का, ला, बर, ले, से, के, या आदि परसर्गों का प्रयोग होता है।

(घ) क्रियाओं के रूप देखत, देखब, रखब, रखन मिलते हैं। अर्थात् अत, अन का प्रयोग मिलता है। कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं।

भोजपुरी-बिहार की बोलियों में भोजपुरी का क्षेत्र सबसे अधिक विस्तृत है। इसका शाहाबाद, सारन, राँची, मुजफ्फरपुर, चम्पारन तथा उत्तर प्रदेश के वाराणसी, गाजीपुर, बलिया, जौनपुर आदि जिलों का कुछ भाग भी आता है।

इसकी कतिपय विशेषताएँ ये हैं:-

(क) भोजपुरी के कुछ क्षेत्र (उत्तरी) में अनुनासिक ध्वनि की बहुलता है। जैसे-भाँट, नाँद आदि।

(ख) 'ड़' का 'र' में परिवर्तन मिलता है। जैसा-(घोड़ा) घोरा, (सड़क) सरक आदि।

(ग) बहुवचन के रूप न, न्ह, नि, आदि प्रत्यय से बनते हैं। जैसे-घरन, घरन्ह, समन आदि।

(घ) भोजपुरी में हम, हमरा, हमार, हमरन रूप भी मिलते हैं।

(ङ) संज्ञा एवं विशेषण के तीन रूप–माली, मलिया, मलिनयवा आदि।

मैथिली–यह भी बिहार प्रदेश की प्रसिद्ध बोली है। इसके क्षेत्र में दरभंगा पूर्णिया, गंगापार तथा, मुंगेर, भागलपुर आदि जिलों का कुछ भाग आता है।

इसकी कुछ विशेषताएँ निम्न हैं–

(अ) संज्ञा तथा विशेषण के तीन रूप भोजपुरी के सदृश्य मिलते हैं।
जैसे–घर, घरवा, घरउवा आदि।

(ब) इसमें अ, इ, उ का अति लघु उच्चारण होता है।
जैसा–अइल, बइल।

(स) सर्वनामों में हम, हमार, हम, सम, तोह, तोहार आदि रूप प्रयुक्त होते हैं।

(ड) लिंग भेद ई या इ प्रत्यय के योग से होता है। जैसे-नैना (लड़का) नेनी (लड़की) आदि। कुछ और भी विशेषताएँ हैं।

मगही–मगध से संबंधित नाम है। इसका क्षेत्र भी पटना, गया, हजारीबाग, मुंगेर तथा भागलपुर के पूर्वी भागों तक फैला है। इसकी कतिपय विशेषताएँ यों हैं–

(क) संज्ञा के तोन रूप भोजपुरी और मैथिली के सदृश्य हैं।

(ख) बहुवचन के रूप न प्रत्यय एवं सम, लोग के योग से बनते हैं।
जैसे–घोरन, राजालोग आदि।

(ग) ओ का अ हो जाता है।
जैसे–मोर–मर (मेरा), लोक–लक (मनुष्य) आदि। और भी विशेषताएँ हैं।

पहाड़ी बोलियाँ–हिमालय की तराई एवं उपत्यका में बोली जाने वाली बोलियाँ तथा भाषाओं का अपना महत्व है। इनमें नेपाली, गढ़वाली और कुमाउँनी आदि बोलियाँ आती हैं। पहाड़ी बोलियों का क्षेत्र गढ़वाल, नेपाल, अल्मोड़ा, नैनीताल, मंसूरी जिलों के मध्य फैला हुआ है।

इनकी विशेषताओं की ओर ध्यान देने पर निम्न तथ्य ज्ञात होते हैं–

(अ) पहाड़ी में ड़, ण, ळ ध्वनियाँ राजस्थानी के सदृश्य बहुलता मिलती है।

(ब) आकारान्त 'ऊँ' कारान्त के रूप में मिलते हैं। जैसे––पढ़णूं, ननूं, मामूं आदि।

(स) पद रचना राजस्थानी के सदृश्य है।

(ड) छे क्रिया का रूप गुजराती के सदृश्य मिलता है।

(इ) उत्तम पुरुष एक वचन में, सर्वनाम रूपों में --
में, मैं, मेरी तथा बहुवचन हम, हमन, हमारी प्रयुक्त होते हैं ।

(आ) भूतकालिक कृदन्त रूप चलनो, चल्यो, ओकारान्त ही हैं ।

मैंने विद्वान लेखकों की पुस्तकों के आधार पर ही हिन्दी की साहित्यिक भाषाओं एवं बोलियों के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। साथ ही इसी अध्याय के प्रथम खंड में अन्य भारतीय आर्य भाषाओं का संक्षिप्त विवरण देने का प्रयास किया है। भारतीय आर्य भाषाओं का संक्षिप्त विवरण देने का प्रमुख उद्देश्य यह है कि इन सबकी जानकारी के पश्चात मैं भाषाओं के वर्गीकरण को सरलता से विवेचित करने में समर्थ हो सकूंगा एवं वर्गीकरण का स्पष्टीकरण अधिक वैज्ञानिक एवं सुस्पष्ट होगा ।

---

५. हिन्दी भाषा

आज भारतीय आर्य भाषाओं में हिन्दी भाषा का अपना निजी महत्व है । परन्तु अधिक गहराई के साथ विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि सभी भारतीय भाषाएँ एक दूसरे से सम्बंद्ध हैं । आज ऐसा ज्ञात होता है कि उत्तरी भारत की भाषाओं और दक्षिण भारत की भाषाओं में अत्यधिक दूरी हो गयी है । वास्तविकता कुछ और है । जिस समय भाषा–लिपि पर विचार करते हैं, तो सुस्पष्ट हो जाता है कि प्रारंभ में सम्पूर्ण भारत में एक ही लिपि प्रचलित थी, जिसकी दो शाखाएँ थीं । एक, उतरी शाखा और दो दक्षिणी शाखा । यह दोनों शाखाएँ ब्राह्मी लिपि की ही शाखाएँ थी । ब्राह्मी के साथ-साथ भारत में संभवत: खरोष्ठी लिपि भी थी । परन्तु यह तो लिपिवेत्ताओं ने सुस्पष्ट कर दिया है, कि भारत में प्रारंभ से ही एक लिपि प्रचलित थी, जिसका आगे चलकर ब्राम्ही लिपि में परिवर्तन हो गया । आज यह भी मान्य कर लिय' गया है कि ब्राम्ही लिपि से ही अन्य भारतीय लिपियों का विकास हुआ है । आज लिपि का विकास देखते हुये यह कहा जा सकता है कि 'देवनागरी लिपि कई दृष्टियों से सर्वश्रेष्ठ है ।

ध्वनि और लिपि–यहां मैं, हिन्दी भाषा जिस लिपि के माध्यम से अपने भावों को अंकित करती है, उस पर संक्षिप्त विचार करता हूँ । इसके पूर्व मैं यह मत दे चुका हूँ, कि भाषा का विकास प्रारंभ में ध्वनि के माध्यम से हुआ, तनन्तर ध्वनियों को चित्रों आदि के पथ से गुजरते हुये लिपि तक पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । स्पष्ट है कि किसी भी भाषा के अध्ययन के लिए सर्वप्रथम उसकी ध्वनियों को समझा जाय । ध्वनियों की जानकारी के बिना किसी भी भाषा का अध्ययन निरर्थक है । आज किसी भी भाषा की ध्वनियां, उसकी लिपि हैं । लिपि उसकी वर्णमाला होती है । वर्णमाला स्वर एवं व्यंजन का समूह होती है । इसका तात्पर्य यह कदापि भी नहीं है, कि ध्वनियाँ बराबर लिपि । परन्तु साथ ही यह भी स्वीकार करना होगा कि ध्वनियों का मूर्त रूप ही लिपि है । इन दोनों में केवल यही अन्तर है, कि किसी भी भाषा को ठीक से बोलने के लिए उस भाषा की ध्वनियों की जानकारी आवश्यक है तो उस भाषा को

लिखने के लिए भाषा की ध्वनियों के लिए निश्चित की गयी लिपि की जानकारी आवश्यक है। मान लीजिये कि मैं बंगाली में बात कर सकता हूँ, परन्तु बंगाली जिस लिपि में लिखी जाती है, वह मुझे नहीं आती है, तो मेरे लिए बंगाली पुस्तकें काला अक्षर भैंस बराबर है। अस्तु, यह स्वीकार करना होगा कि किसी भी भाषा के सुसम्बद्ध ज्ञान के लिए उस भाषा की ध्वनियों एवं लिपि का ज्ञान नितान्त आवश्यक है।

हिन्दी भाषा नागरी (देवनागरी) लिपि में लिखी जाती है। हिन्दी भाषा में जिन मूल ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है, वे ही हिन्दी की वर्णमाला है। यही वर्णमाला हिन्दी की लिपि है। यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है, कि मूल ध्वनियां क्या हैं? मूल ध्वनियां वे होती हैं, जिसके खंड न हों। जिन मूल ध्वनियां के खंड नहीं होते, वे ही वर्ण कहलाते हैं। परन्तु जहाँ ध्वनि में एक से अधिक वर्ण आ जाते हैं, वह ध्वनि 'वर्ण' नहीं कहला सकती। मैंने 'आदर्श हिन्दी' नाम से व्याकरण की पुस्तक लिखी है। उसमें मैंने 'वर्ण माला' निम्न प्रकार से दी है--

स्वर–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ॠ, ॡ.

स्वर के तीन भेद हैं--

(१) ह्रस्व स्वर (२) दीर्घ स्वर और (३) प्लुत स्वर.

व्यंजन–कवर्ग–क ख ग घ ङ
चवर्ग–च छ ज झ ञ
टवर्ग–ट ठ ड ढ ण
तवर्ग–त थ द ध न
पवर्ग–प फ ब भ म
अन्तस्थ–य र ल व
ऊष्म–श, ष स ह
संयुक्ताक्षर– क्ष त्र ज्ञ
अनुस्वार–अं
विसर्ग–अः

इस प्रकार कुल ५० वर्ण गिनाये थे। परन्तु आज ये वर्ण कुछ गलत लगते हैं। उदाहरणार्थ–क=क्+अ=क होता है। अतः वर्णमाला का 'क', क के समान न लिखकर 'क्' लिखना चाहिये। इसी के साथ एक बात और ध्यान में आती है, कि हिन्दी में क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ढ़, ङ (सभी व्यंजन हलन्त होते है) ये वर्ण भी हैं। अतः हिन्दी की ध्वनियों के अनुसार हिन्दी भाषा की वर्ण माला का रूप निम्न प्रकार से होना चाहिये--

स्वर–अ आ इ ई उ ऊ ॠ ए ऐ ओ औ ० ः।

व्यंजन–कवर्ग–क् ख् ग् घ् ङ
चवर्ग–च् छ् ज् झ् ञ्
टमर्ग–ट् ठ् ड् ढ् ण्
तवर्ग–त् थ् द् ध् न्
पवर्ग–प् फ् ब् भ् म्
अन्तस्थ–य् र् ल् व्
ऊष्म–श् ष् स् ह्
द्वि–स्पृष्ट–ड़ ढ़ क़ ख़ ग़ ज़ फ़ (सभी व्यंजन हलन्त होते हैं।)

स्वरों के नीचे तिरछी लकीर (्) नहीं लगायी गयी है। यह केवल व्यंजनों में लगायी गयी है। इसे 'हल्' कहते हैं। 'हल्' लगाने से ही व्यंजन की शुद्ध ध्वनि उच्चरित होती है। अन्यथा व्यंजनों में 'अ' स्वर मिला रहता है। जैसा कि मैंने वर्णमाला का शुद्ध रूप लिखने के पूर्व 'क' का उदाहरण देकर सुस्पष्ट कर दिया है।

यह है, हिन्दी भाषा की वर्णमाला की ध्वनियों का शुद्ध लिपि रूप।

यहाँ एक तथ्य और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। हमने ऊपर : को स्वरों के साथ लिया है। वास्तव में ये स्वर नहीं हैं। इन्हें हम 'अं' और 'अ:' के रूप में लिखते हैं। स्पष्ट है कि '' के साथ 'अ' स्वर है तथा ':' के साथ भी 'अ' है। अत: इन्हें भी हमें व्यंजन ही स्वीकार करना होगा। इसी प्रकार क्ष, त्र, ज्ञ में भी एक से अधिक व्यंजन हैं। क्ष=क्+ष्। त्र=त्+र् ज्ञ=ज्+ञ्। इस कारण इन्हें वर्णमाला में स्थान नहीं मिल सकता, एवं स्थान देना भी नहीं चाहिये।

हिन्दी भाषा की लिपि देवनागरी है। ऊपर हम देख चुके हैं कि देवनागरी में स्वर और व्यंजन कितने हैं। स्वरों और व्यंजनों की ध्वनियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है। स्वर दो प्रकार के हैं। उन्हें क्रमश: (१) मूल और (२) संयुक्त कहा है। यहाँ यह भी समझ लेना आवश्यक है, कि 'स्वर' किसे कहते हैं? इनकी ध्वनियाँ उच्चिरत करते समय मुख–विवर की स्थिति कैसी रहती है। इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है, कि स्वरों की ध्वनियाँ करते समय मुख न तो एकदम बन्द होता है और न ही बहुत सँकरा होता है। साथ ही स्वरों के उच्चारण के समय किसी भी अन्य ध्वनि की आवश्यकता नहीं होती है। हम ऊपर देख चुके हैं कि सभी व्यंजनों की पूर्ण ध्वनि उच्चरित करने के लिए 'अ' का सहयोग अनिवार्य है। स्वरों में मूल स्वर निम्न हैं–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ओ संयुक्त स्वर निम्न हैं–ऐ (अ+ए) औ (अ+ओ) ध्वनियों के आधार पर इनके तीन प्रकार स्वीकार किये गये हैं (१) ह्रस्व स्वर–केवल एक मात्रा अ, इ, उ, ऋ (२)

दीर्घ स्वर–एक से अधिक आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ और (३) प्लुत स्वर–इन स्वरों में तीन मात्राएँ लगती हैं जैसे ओ होऽऽऽआ, ओऽऽऽआदि। प्लुत स्वर को लिखते समय कभी-कभी उसके सामने ३ अंक भी लगाते हैं।

कुछ सामान्य तथ्य

निरनुनासिक–स्वरों के उच्चारण के समय हवा केवल मुँह से ही निकलती है। इनके उच्चारण के समय नाक का कोई संबंध नहीं रहता, अतः इन्हें निरनुनासिक कहते हैं। स्पष्ट हैं, कि सभी स्वर निरनुनासिक हैं।

अनुनासिक–स्वरों के उच्चारण तो मुँह से ही होते हैं। परन्तु जिस समय स्वरों के साथ चन्द्र बिन्दु ँ या अनुस्वार ं लगाते हैं। तब इनके उच्चारण में नाक की सहायता लेनी पड़ती है। उस समय स्वर अनुनासिक हो जाते हैं। उदाहरणार्थ–अँ, अं, आं, आदि (ऐसा सभी स्वरों के साथ हो सकता है।)

इसी प्रकार व्यंजनों की ध्वनियों के उच्चारण के भी भाग किये गये हैं। व्यक्ति बोलने के समय सर्वप्रथम हवा को फेफड़े से बाहर निकालता है। यह हवा मानव के स्वर यंत्र से होकर गले में से गुजरती है। जिस समय हवा, स्वर यंत्र का मुख बंद रहता है, और हवा रगड़ खाकर निकलती है, तब हवा कांपती है। ऐसे समय जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे 'घोष' [1] कहते हैं।

जिस समय स्वर यंत्र का मुख बंद नहीं रहता और हवा सरलता से निकल जाती है, तब जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे 'अघोष' [2] कहते हैं।

हवा को संस्कृत में 'प्राण' कहते हैं। संस्कृत में इसके आधार पर 'अल्प प्राण' एवं 'महाप्राण' दो भेद किये गये है। जब कम हवा से उच्चारण होते हैं तब 'अल्पप्राण' एवं जब अधिक हवा से उच्चारण होते है तब महाप्राण' ध्वनि होती है।

हिन्दी में, हवा के निकलने के आधार पर निम्न भेद किये गये हैं। हिन्दी में व्यंजनों के लिए निम्न ८ प्रकार के प्रयत्न स्वीकृत हैं, एवं उसी के आधार पर वर्गीकरण हुआ हैं।

(१) **स्पर्श**–स्पर्श का अर्थ होता है, छूना। हिन्दी में "क वर्ग," 'ट वर्ग' 'त वर्ग' में न को छोडकर, 'प वर्ग' के उच्चारण में क्रमशः जीभ के पिछले भाग का कोमल तालु (जो कंठ के पास स्थित है।) से जीभ की नोक उलटकर

---

१. सभी स्वर, ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म, य, र, ल, व, ह, ग, ज़, घोष है।

२. क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, श, ष, स अघोष हैं।

तालु के मध्य भाग या मूर्द्धा से, जीभ के अगले भाग को ऊपर के दाँतों से, दोनों ओठों का स्पर्श होता है। इसी तरह 'क' के उच्चारण में जीभ की जड़ कोमल तालु को स्पर्श करती है। अतः इन व्यंजनों की ध्वनियों को स्पर्श कहते हैं।

(२) **स्पर्श-संघर्षी**–इसमें छूने के साथ 'संघर्ष' अर्थात रगड़ होती है। 'च', 'छ', 'ज', 'झ' के उच्चारण में जीभ का अगला ऊपरी हिस्सा कठोर तालू का स्पर्श और संघर्ष करता है। इस कारण इन व्यंजनों की ध्वनियों को स्पर्श-संघर्षी कहते हैं।

(३) **अनुनासिक**–इसमे ध्वनि मुंह के साथ-साथ नाक से भी निकलती है। 'म' 'न' 'ण' 'ञ' 'ङ' व्यंजनों को उच्चरित करते समय हवा मुंह के साथ-साथ नाक से भी निकलती है। अतः इन व्यंजनों की ध्वनियां अनुनासिक कहलाती हैं।

(४) **पार्श्विक**–पार्श्विक का अर्थ होता है, 'बाजू का' या 'बगल का' इसमें जीभ तालु को छूती है, पर दोनों या एक बगल में रास्ता खुला रहता है और हवा निकलती रहती है। 'प' 'क' के सदृश्य उच्चारण में हवा-मार्ग पूर्णतः बंद नहीं होता। 'ल' के उच्चारण के समय जीभ का शीर्ष भाग मसूड़े के पास इसी प्रकार क्रिया करता है। अतः 'ल' के उच्चारण की ध्वनि पार्श्विक कहलाती है।

(५) **लुंठित**–लुंठित का तात्पर्य है। बार-बार हिलना। हिन्दी में 'र' व्यंजन के उच्चारण के समय जीभ की नोक मसूड़े के पास दो-तीन बार हिलती है। इसी कारण 'र' के उच्चारण की ध्वनि लुंठित कहलाती है।

(६) **संघर्ष**–कभी-कभी मुख के दो अंग इतने पास में उच्चारण के समय आ जाते हैं कि मुख का मार्ग संकरा हो जाता है एवं हवा संघर्ष अर्थात् घर्षण या रगड़ती हुई निकलती है। फ, व, स, ज, श, ख, ग, ह इसी प्रकार के व्यंजन हैं। जिनके उच्चारण के समय रगड़ होती है। 'फ' और 'व' के उच्चारण में नीचे के ओठ और ऊपर के दांत के बीच, 'स', 'ज', में जीभ के अगले भाग और मसूड़े के बीच, 'श' में जीभ के अगला भाग और कठोर तालु के बीच ख, ग, में जीभ की जड़ और कोमल तालु के बीच तथा 'ह' में स्वर यंत्र के मुख के दोनों परदों या ढक्कनों के बीच हवा रगड़ खाती हुई निकलती है।

(७) **अर्द्धस्वरीय प्रयास**–इसमें दो अंग समीप आते हैं। पर इतने अधिक नहीं कि हवा रगड़ खाकर निकले। 'य', 'व' के उच्चारण के समय ऐसा ही

होता है। 'य' के उच्चारण में जीभ का अगला ऊपरी भाग कठोर तालु के पास जाता है और 'व' के समय दोनों ओठ समीप आते हैं। साथ ही जीभ का पिछला भाग और कोमल तालु भी फिर भी रगड़ नहीं होती।

(८) उत्क्षिप्त–उत्क्षिप्त का अर्थ होता है, फेंका हुआ। कुछ व्यंजनों के उच्चारण के समय ध्वनियों के कुछ अंश एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर फेंके जाते हैं। 'ड़' 'ढ़' के उच्चारण में जीभ की नोक उलटकर मूर्द्धा से आगे की ओर ध्वनि का कुछ अंश फेंकती है।

हिन्दी भाषा का अध्ययन करते समय सामान्यतः उपर्युक्त ध्वनि संबंधी तथ्यों की जानकारी कर लेना आवश्यक है। इससे हिन्दी बोलने तथा लिखने में अधिक न सही, पर कुछ तो सुविधा हो ही जाती है। यह सत्य है कि ध्वनियों के आधार पर हम कई बार सही भाषा नहीं लिख सकते। उदाहरणार्थ श, स, ष के उच्चारण में गलती कर जाते हैं। फिर भी लिखते समय सही ढंग से लिखते हैं।

लिपि की लयबद्धता—हिन्दी की लिपि नागरी (देवनागरी) है। इसका विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है। ब्राह्मी लिपि का प्रयोग भारत में अशोक के शिलालेखों के पूर्व से होता रहा है, विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है। सुस्पष्ट है कि इस समय भारत में प्रचलित लिपि किसी विदेशी लिपि का विकसित रूप न होकर भारत में प्रचलित प्राचीन लिपि का ही विकसित रूप है।

भारत के प्राचीनतम ग्रंथों यथा ऋग्वेदादि की रचना की सर्वश्रेष्ठ विशेषता यह है कि उनमें लयबद्धता है। इसका प्रमुख कारण है। भारत में प्रारंभ में गाकर याद करने की प्रवृति रही है, इससे यही सिद्ध होता है कि भारतीय विद्वानों ने अपनी बातें कहने के लिए प्रारंभ में ऐसी ध्वनियों का विकास किया था, जो ताल, लय, और सुर के अधिक सन्निकट थीं। आज जिस समय हम भारतीय भाषाओं की वर्णमाला को समझने का प्रयत्न करते हैं, तो होता ज्ञात है, कि इसकी व्यवस्था लय से सम्बधित है। प्रारंभ में स्वरों की व्यंवस्था, बाद में व्यंजनों की व्यवस्था की गयी है। स्वरों में ह्स्व–दीर्घ का क्रमिक रूप है। वर्णमाला के अक्षरों को क्रमशः उच्चरित करने पर संगीतात्मकता परिलक्षित होती है। साथ ही प्रत्येक व्यंजन का सही रूप तो हलन्त (्) है। शब्दों को लिखते समय उसमें 'अ' को संयुक्त करना आवश्यक है। प्रत्येक व्यंजन में 'अ' की स्थिति स्वर के निर्माण में सहायक होती है। साथ ही बारह खड़ी क, निर्माण अपने आप में संगीत की व्यवस्था लिये हुये है। यदि हम क, का, कि' की, कु, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः को पढे तो ऐसा ज्ञात होता है, कि संगीत

की किसी रागिनी का अभ्यास करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस लयबद्धता के कारण हिन्दी के लिखने में ध्वनि के आधार पर बहुत सहायता मिलती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी–भाषा को सीखने के लिए क्रमशः किस प्रकार ध्वनि एवं लिपि का अध्ययन आवश्यक है इसकी अत्यंत संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत की है। यह तथ्य हिन्दी के लिए ही नहीं, वरन् भारतीय भाषाओं में जितनी भाषाएँ देवनागरी के ध्वनि संयोजन के अनुसार विकसित हुयी हैं, उनके अध्ययन के लिए आवश्यक है। एक, दो वर्णों की ध्वनि सम्बन्धी कठिनाई हल करने के पश्चात् कार्य सरल हो सकता है। उदाहरणार्थ मराठी में 'ळ' की ध्वनि के समानार्थ 'ड़' ध्वनि प्रचलित है (कई अंशों तक समान है)।

---

६. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का पुनर्वर्गीकरण

भाषा–विज्ञान की दृष्टि से भाषाओं का वर्गीकरण विद्वानों ने दो प्रकार से किया है–एक, आकृतिमूलक वर्गीकरण, दो परिवारिक वर्गीकरण। आकृतिमूलक एवं पारिवारिक वर्गीकरण के पूर्व भाषाओं के वर्गीकरण के कई आधार थे। आधुनिक काल में उपर्युक्त दो वर्गीकरण ही प्रमुख रूप से स्वीकार्य किये गये हैं।

आकृतिमूलक वर्गीकरण–इस वर्गीकरण के माध्यम से भाषाओं के दो तत्त्वों की ओर ध्यान जाता है–अर्थतत्त्व और सम्बन्ध तत्त्व। अर्थ तत्त्व वस्तुओं कार्यों, विचारों का अर्थ सूचित करते हैं एवं सम्बंधतत्त्व, अर्थतत्त्व में परस्पर सम्बन्ध प्रस्थापित करते हैं। भाषा के शब्द अर्थ तत्त्व के द्योतक होते हैं–उदाहरणार्थ लड़का, सायकल, आना, आदि ऐसे शब्द अर्थ तत्त्व के द्योतक हैं। एवं इनमें जुड़नेवाले शब्द को, से, एँ आदि शब्द सम्बन्ध तत्त्व का बोध कराते हैं। अर्थतत्त्व एवं सम्बन्ध तत्त्व के मिलने की प्रक्रिया को पद रचना कहते हैं। पद रचना के आधारपर किया गया वर्गीकरण, आकृतिमूलक वर्गीकरण कहलाता है। इस पद्धति के वर्गीकरण के अनुसार, मूल शब्दों से रूप बनाने की पद्धति के अनुसार जिन भाषाओं में सादृश्य ज्ञात होता है, वे एक ही वर्ग में रखी जाती हैं। यह वर्गीकरण रूप, व्याकरण, पद–रचना, वाक्य-रचना के अनुसार विश्लेषित कर सादृश्यता को स्पष्ट करता है, अतः इसे रूपात्मक या व्याकरणिक या रचनात्मक या वाक्यात्मक वर्गीकरण की भी संज्ञा दी जाती है। इस वर्गीकरण की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है, पद–रचना का साम्य। अस्तु, यह स्वीकार किया जा सकता है, कि आकृतिमूलक वर्गीकरण में केवल पद रचना को ही महत्त्व दिया गया है।

पारिवारिक वर्गीकरण–आकृतिमूलक वर्गीकरण में केवल पद–रचना को ही महत्त्व दिया गया है। अर्थात् केवल सम्बन्ध तत्त्व की ही समानता देखी जाती है, एवं उसे ही महत्ता प्रदान की है। परन्तु पारिवारिक वर्गीकरण में सम्बन्ध तत्त्व के साथ-साथ अर्थतत्त्व की भी समानता या साम्य को महत्त्व दिया जाता है। इस प्रकार पारिवारिक वर्गीकरण के अन्तर्गत वे ही भाषाएँ एक वर्ग

में ली जा सकती हैं, जो पद रचना के अनन्तर अर्थ की दृष्टि से भी साम्य है। अर्थ की साम्यता का तात्पर्य होता है–(१) शब्द–भंडार की समानता, (२) शब्दों की ध्वनियों की समानता, (३) शब्दों के अर्थ की समानता, (४) पद रचना एवं वाक्य विन्यास की समानता, एवं (५) स्थान की समीपता। इससे सुस्पष्ट है कि आकृतिमूलक वर्गीकरण जहाँ एक ओर केवल पद रचना को महत्त्व देता हूँ, तो पारिवारिक वर्गीकरण भाषाओं के सभी पक्षों की जाँच उचित ढंग से कराते हुये स्थिति को स्पष्ट करने का मार्ग प्रदत्त करता है।

पारिवारिक वर्गीकरण में सूक्ष्म निरीक्षण की परिपाटी है। इसकी सूक्ष्म निरीक्षण–प्रणाली भाषाओं को वंश+परंपरा, ऐतिहासिकता, आदि को भी स्पष्ट करती है। परिणामतः प्रस्तुत वर्गीकरण को वंशात्मक या वंशानुक्रमिक या ऐतिहासिक वर्गीकरण भी कहते हैं।

आकृतिमूलक वर्गीकरण–पद रचना की दृष्टि से संसार की भाषाओं को दो वर्गों में विभक्त किया गया है––

(१) अयोगात्मक एवं (२) योगात्मक

अयोगात्मक–अयोगात्मक का अर्थ होता है, योग न होना, अर्थात् सम्बन्ध न जोड़ना। जिन भाषाओं में शब्द में उपसर्ग या प्रत्यय आदि जोड़कर पद नहीं बनाये जाते, उन्हें अयोगात्मक भाषाएं कहते हैं। इनमें प्रत्येक शब्द की स्वतंत्र सत्ता रहती है। शब्दों की व्याकरणिक कोटि नहीं होती है। अर्थात् संज्ञा, सर्वनाम, आदि प्रकारों में शब्द विभाजित नहीं किये जाते। इसमें स्थान क्रम का बहुत महत्त्व है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण है (चीनी भाषा)। अयोगात्मक भाषा को एकाधारी भाषा भी कहते हैं।

योगात्मक–योगात्मक, अर्थात् जहाँ योग होता है। याने अर्थ और सम्बन्ध तत्त्व का योग होता है। अतः ऐसी भाषाएँ जिनमें अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व में योग है, उन्हें योगात्मक भाषाएं कहते हैं। योग के भी कुछ प्रकार हैं। परिणामतः सम्बन्ध तत्व के योग की प्रकृति को ध्यान में रखते हुये, इसके निम्न वर्ग किये गये हैं। वे इस प्रकार हैं (१) श्लिष्ट योगात्मक, (२) अश्लिष्ट योगात्मक, एवं प्रश्लिष्ट योगात्मक।

(१) **श्लिष्ट योगात्मक**–जिन भाषाओं में सम्बन्ध तत्त्व के जुड़ने से अर्थ तत्त्व में विकार उत्पन्न होता है, वे भाषाएँ श्लिष्ट योगात्मक कहलाती हैं। संसार में इस वर्ग की भाषाएँ सर्वाधिक हैं। भोरोपीय तथा सभी हामी परिवार की भाषाएँ प्रमुख हैं।

(२) **अश्लिष्ट योगात्मक**–जिन भाषाओं में सम्बन्ध तत्व का योग होने के पश्चात् भी सम्बन्ध तत्त्व, अर्थतत्त्व से पृथक् दिखायी देता है, वे भाषाएँ अश्लिष्ट

योगात्मक कहलाती हैं । दोनों तत्त्व सरलता से पृथक् किये जा सकते हैं । अर्थ-तत्त्व में कोई विकार या परिवर्तन नहीं होता । तुर्की, कन्नड़ तथा बांटू परिवार की भाषाएँ इसी वर्ग में आती हैं ।

(३) **प्रश्लिष्ट योगात्मक**–जिन भाषाओं में अर्थतत्त्व और सम्बन्ध तत्व में ऐसा योग होता है कि उन्हें पृथक् करना तो दूर रहा, पहचानना या समझना भी कठिन हो जाता है, कि अर्थतत्त्व कौनसा है और सम्बन्धतत्त्व कौनसा है । जैसे "ऋतु" से "आर्तवा" । ऐसी भाषाएँ प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ कहलाती हैं । इस वर्ग में एस्किमो और बास्क परिवार की भाषाएँ तथा ग्रीनलैंड और अमेरिका की मूल भाषाएँ आती हैं ।

पारिवारिक वर्गीकरण–पारिवारिक वर्गीकरण में पाँचों तत्त्वों को ध्यान में रखते हुये संसार की भाषाओं को सात प्रमुख परिवारों में विभाजित करने का विद्वानों ने प्रयत्न किया है । वे इस प्रकार हैं--

(१) भारत–यूरोपीय, (२) सामी
(३) मलय–पालिनिशियाई, (४) द्रविड़
(५) जापानी–कोरियाई, (६) यूराल–अल्ताई और
(७) चीनी–तिब्बती ।

वर्गीकरण की वैज्ञानिकता एवं प्रामाणिकता की ओर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होता है कि पारिवारिक वर्गीकरण अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक एवं ऐतिहासिक है । इस सम्बंध में मैं अधिक चर्चा यहाँ नहीं करना चाहता ।

भारत–यूरोपीय परिवार को आर्य परिवार भी नाम या संज्ञा दी गयी है । यह परिवार संसार का सबसे बड़ा परिवार है । साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी इस परिवार का सर्वाधिक महत्त्व है । यहा मैं आर्य–परिवार की भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण पर विचार करता हूँ।

भारत–यूरोपीय या आर्य परिवार--यह परिवार भारत यूरोप और ईरान तक फैला हुआ है । आज इन प्रदेशों की भाषा में अधिक साम्यता दृष्टिगोचर नहीं होती । इसका कारण है, भाषा का निरन्तर विकसित होते जाना अर्थात् "भाषा बहता नीर है ।" भाषा निरन्तर विकासशील संस्था है । परन्तु इन क्षेत्रों की प्राचीन भाषाओं के रूपों में विद्वानों को विशिष्ट–सादृश्यता के दर्शन हुये हैं । परिणामतः ही इन प्रदेशों की भाषाओं को एक ही परिवार में रखा है । इस सम्बन्ध में, मैं संस्कृत भाषा की चर्चा करते समय कर चुका हूँ ।

भारोपीय परिवार की भाषाओं का वर्गीकरण विद्वानों ने–ध्वनियों के आधार पर यों किया है—केंतुम् और सतम् । केन्तुम् वर्ग के अन्तर्गत ग्र क

इटालिक, वेल्टी, जर्मनी, हित्ती और सुखारी उपपरिवार की भाषाएँ आती हैं। सतम् वर्ग के अन्तर्गत भारतीय, ईरानी, आर्मीनी, बाल्ती–स्लेवानी तथा अलबानी उपपरिवारकी भाषाएं आती हैं।

भारत–ईरानी उपपरिवार की भाषाएँ सतम् वर्ग में आती हैं। इसकी तीन प्रधान शाखाएँ हैं- ईरानी, दरद और भारतीय–आर्य भाषा।

भारतीय आर्य भाषा–भारत, ईरानी उपपरिवार की भाषाओं में भारतीय आर्य भाषा का विशेष महत्त्व है। भारतीय आर्य भाषा सम्पूर्ण भारोपीय परिवार की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं समृद्ध शाखा है। इस भाषा परंपरा का स्वरूप हमें लगभग पांच हजार वर्ष से अविच्छिन्न रूप से मिलता है। इसके विकास क्रम को निम्न खंडों में विभाजित कर सकते हैं:—

१) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा––२५०० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक।

२) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा––५०० ई० पू० से १००० ई० पू० तक।

३) विकसित आधुनिक भारतीय आर्य भाषा––१००० ई० से अद्युनातन काल तक।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा–प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के उदाहरण ऋग्वेद में मिलते हैं। इसे वैदिक कालीन आर्य भाषा कहते हैं। ऋग्वेद का काल २५०० ई. पू. कुछ विद्वानों ने आंका है। इस भाषा की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं––(अ) यह श्लिष्ट योगात्मक भाषा है। (ब) इसकी पद रचना में बहुत दुरुहता है और (स) यह भाषा स्वर–प्रधान अधिक हैं, अर्थात् संगीतात्मक है। पांचवी शताब्दी तक आते-आते भाषा-विज्ञान के आदि विद्वान पाणिनि ने भाषा का संस्कार किया और उसे व्यवस्थित रूप प्रदत्त किया। जिसका नाम संस्कृत पड़ा। संस्कृत धीरे-धीरे सम्पूर्ण देश की साहित्यिक भाषा बन गयी थी। इसका साहित्य, विश्व–साहित्य में बेजोड़ है एवं अत्यधिक समृद्ध है।

२) **मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा**––पांचवी शताब्दी ई० पूर्व से १० वीं शताब्दी तक मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का विकास एवं प्रचार निजी विशेषताओं के साथ हुआ है। परिणामतः आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हो सका। इस समय की भाषाओं का विकास संस्कृत से प्राकृत की ओर बढ़ा। जिसे प्राकृत नामाभिधान किया गया। प्राकृत के रूप भी समयानुसार धीरे-धीरे विकसित एवं परिवर्तित होते गये हैं। उनकी ओर ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि प्राकृत का विकास किस प्रकार हुआ

है। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत तथ्य स्पष्ट होते हैं। प्राकृत का विकास तीन स्थितियों में प्रमुख रूप से हुआ है, स्वीकार किया जा सकता है। वैसे अधिक स्थितियाँ भी हो सकती हैं। तीन स्थितियाँ यों हैं—

(अ) **प्रथम प्राकृत** (पाली)–५०० ई० पूर्व से पहली शताब्दी तक।

(ब) **द्वितीय प्राकृत** (साहित्यिक रूप)–प्रथम शताब्दी से पाँचवीं शताब्दी तक।

(स) **तृतीय प्राकृत** (प्राकृतों के विकसित रूप)–छठी शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक।

इसे अपभ्रंश भी कहते हैं।

(अ) **प्रथम प्राकृत** (पाली)–पाली में बौद्ध साहित्य बहुत रचा गया है। इसके कई शिलालेख भी प्राप्य हैं। संस्कृत के व्याकरण सम्बन्धी नियमों में थोड़ा सा परिवर्तन कर उन्हे सरल बनाने का प्रयास पाली में किया गया है।

(ब) **द्वितीय प्राकृत**–यह संस्कृत से विकसित भाषा के रूप का विशिष्ट साहित्यिक रूप परिलक्षित होती है। वास्तव में पाली का परिवर्तित या विशिष्ट या साहित्यिक रूप ही द्वितीय प्राकृत कहलाया है एवं साहित्यिक प्राकृत के रूप में हमे शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्द्ध–मागधी आदि भेद मिलते हैं।

(स) **तृतीय प्राकृत**–साहित्यिक प्राकृतों का विकसित रूप तृतीय प्राकृत की स्थिति है। इन प्राकृतों का नाम अपभ्रंश पड़ा है। अपभ्रंश भाषाओं की विकास, प्राकृतों के आधार पर ही हुआ हैं। एवं इनके भेद भी उसी प्रकार विकसित हुये हैं। इन्हीं अपभ्रंशों के विकसित रूप आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ हैं।

(३) **विकसित आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ**–विकसित आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास अपभ्रंशों का विकसित एवं क्रमिक परिवर्तित रूप है। क्रम बद्धता की ओर ध्यान दिया जाय तो सुस्पष्ट हो जाता है, कि विकसित आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का आधुनिक रूप संस्कृत, प्राकृत, एवं अपभ्रंश के विकसित रूप का ही प्रतिफल है।

अस्तु यह निःसन्देह स्वीकार करना होगा, कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास क्रम संस्कृत से हुआ है। प्राकृतों एवं अपभ्रंश के के माध्यम से यहाँ तक पहुँचा है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण सर्वप्रथम भाषा विज्ञान के विद्वान डॉ० ग्रियर्सन ने प्रस्तुत किया था। प्रारंभ में ग्रियर्सन ने वर्गीकरण निम्न ढंग से प्रस्तुत किया था। डॉ० ग्रियर्सन ने आधुनिक आर्य भाषाओं को अन्तरंग, मध्य एवं बहिरंग शाखाओं में विभक्त करते हुए वर्गीकरण यों प्रस्तावित किया है–

१. बहिरंग शाखा—

(अ) पश्चिमोत्तरी वर्ग

१) लहँदा २) सिन्धी

(ब) दक्षिणी वर्ग

१) मराठी

(स) पूर्वी वर्ग

१) असमी या असमीया २) बंगला

३) उड़िया या उत्कली ३) बिहारी

२. मध्यवर्ती शाखा

१) पूर्वी हिन्दी

३. अन्तरंग शाखा

(अ) केन्द्रीय वर्ग

१) पश्चिमी हिन्दी २) पंजाबी

३) गुजराती २) भीली

५) खानदेशी ६) राजस्थानी

(ब) पहाड़ी वर्ग

१) पूर्वी पहाडी या नेपाली २) केन्द्रवर्ती पहाड़ी

३) पश्चिमी पहाड़ी

डॉ० ग्रियर्सन ने उपयुक्त वर्गीकरण में कुछ समयोपरान्त संशोधत कर नवीन स्वरूप प्रस्तुत किया था, वह यों है--

(१) मध्यदेशीय भाषा--

(क) हिन्दी (पश्चिमी)

(२) अन्तवर्ती भाषाएँ--

(अ) मध्यदेशीय भाषा से सम्बद्ध अन्तवर्ती भाषाएँ-

(१) पंजाबी (२) राजस्थानी

(३) गुजराती (४) पहाड़ी वर्ग (नेपाली)

(ब) बहिरंग से सम्बद्ध अन्तवर्ती भाषा-

(१) पूर्वी हिन्दी

(३) बहिरंग भाषाएँ--

(क) पश्चिमोत्तरी वर्ग

(१) लहँदा (२) सिन्धी

(ख) दक्षिणी वर्ग–
(१) मराठी

(ग) पूर्वी वर्ग—
(१) बिहारी (२) उड़िया
(३) बंगला (४) असमी

इस वर्गीकरण में खानदेशी गुजराती में और भीली को राजस्थानी में सम्मिलित कर दिया गया है।

भारतीय विद्वान् डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने डॉ० ग्रियर्सन से असहमत होते हुये अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। डॉ० चटर्जी ने भी वर्गीकरण दो बार किया है एवं उन्होंने अपना संशोधित वर्गीकरण अधिक युक्तिसंगत बतलाया है। यहाँ पर संशोधित, द्वितीय वर्गीकरण उल्लिखित है।

१. प्रथम श्रेणी – उत्तरी पहाड़ी वर्ग
(अ) नेपाली
(ब) गढ़वाली

२. द्वितीय श्रेणी – पश्चिमोत्तरी पहाड़ी वर्ग
(अ) लहँदा
(ब) सिन्धी

३. तृतीय श्रेणी – मध्यदेशीय वर्ग
(अ) पश्चिमी हिन्दी–
(१) खड़ी बोली (२) ब्रज भाषा
(३) उर्दू (४) बांगरू
(५) बूंदेली
(ब) पंजाबी
(स) राजस्थानी
(ड) गुजराती

४. चतुर्थ श्रेणी – पूर्व मध्य वर्ग
(अ) पूर्वी हिन्दी
(१) अवधी (२) बघेली
(३) छत्तीसगढ़ी

५. पंचम श्रेणी – पूर्वी वर्ग
(अ) असमी या असमिया
(ब) बंगला

(स) उड़िया

(ड) बिहारी

६. षष्ठम – **दक्षिणी वर्ग**

(अ) कोंकणी

(ब) हलबी

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने डॉ० चटर्जी से सहमत होते हुये स्वयं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है ।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण कुछ अन्य विद्वानों ने भी प्रस्तुत किये हैं । उन वर्गीकरण की सबसे बड़ी कमी है, वैज्ञानिकता । पूर्ण वैज्ञानिकता की दृष्टि से अभी तक कोई भी वर्गीकरण प्रस्तुत नहीं हो सका है । डॉ० ग्रियसेन, डॉ० चटर्जी एवं डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने-अपने दृष्टिकोण से वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं । डॉ० ग्रियर्सन के वर्गीकरण से असहमत होते हुये अपने मत की पुष्टि के लिए नवीन वर्गीकरण प्रस्तुत किया है । डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने डॉ० चटर्जी के वर्गीकरण से सहमत होते हुये अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है । अस्तु मैं यहां पर डॉ० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण नहीं दे रहा हूं । डॉ० ग्रियर्सन एवं डॉ० चटर्जी के वर्गीकरण कुछ तथ्यों की भिन्नता पर आधारित है, परन्तु गहराई से अध्ययन किया जाय, तो सुस्पष्ट हो जाता है, कि जिन तर्कों कें आधारपर डॉ० चटर्जी ने डॉ० ग्रियर्सन के वर्गीकरण से असहमति प्रगट की है । उन्हीं तर्कों के आधार पर डॉ० चटर्जी का भी वर्गीकरण भी अपूर्ण ज्ञात होता है । हम यहाँ डॉ० चटर्जी के वर्गीकरण की वैज्ञानिकता की चर्चा करते हुये, उसकी मौलिकता एवं महत्त्व पर विचार करते हैं ।

डॉ० चटर्जी का वर्गीकरण निम्न वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है :–

(अ) गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी में भी हमें अल्पप्राण एवं महाप्राण ध्वनियों में अभेद दृष्टिगोचर होते हैं । जैसे वेश–भेस आदि

(ब) 'स' का 'ह' और 'श' के रूप ध्वनि उच्चारण मिलते हैं । जैसे साग–हाग, केसरी–केहरी ।

(स) 'म्ब' का 'म' अंतरंग भाषाओं में मिलता है, तथा 'इ' का 'उ' । जैसे– अम्ब–अमिया, बिंदू–बूंद ।

(ड) बहिरंग और अंतरंग की सभी धातुएँ और शब्द समान नहीं हैं ।

(इ) विभक्ति तथा प्रत्यय प्रधान शब्द केवल अंतरंग की विशेषता नहीं है, दोनों में है ।

(क) सब बहिरंग भाषाओं में भूतकालिक क्रियाओं के अंतर्गत सर्वनाम नहीं मिलते हैं ।

(ख) सभी भूतकालिक क्रियाओं के रूपों में कर्त्ता के पुरुष वचन का बोध नहीं होता । आदि-आदि ।

(ग) डॉ० चटर्जी ने अंतिम स्वर, अपिनिहित, इ–ए; उ–इ, च और ज का 'त्स' और 'दूज' आदि परिवर्तनों के आधार पर अमान्य किया है । परन्तु वर्गीकरण का ध्यान से अध्ययन करने से विदित हो जाता है, कि डॉ० चटर्जी ने बहिरंग और अंतरंग शब्दों का बहिष्कार करते हुये, तनिक हेर-फेर के साथ अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है ।

डॉ० चटर्जी ने उदीच्य एवं श्रेणी का प्रयोग किया है । वास्तव में डॉ० चटर्जी ने अपना वर्गीकरण प्रस्तुत करते समय आ० भा० आर्य भाषाओं के सम्बन्ध में नूतन तथ्योद्घाटन नहीं किया है । बल्कि हम तो यह कहना चाहेंगे कि डॉ० चटर्जी ने डॉ० ग्रियर्सन के आधार पर ही अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है । पूर्णतः मौलिक होने के बजाय तनिक विकास मात्र का परिचय दिया है, जिसे हम परिवर्तन भी कह सकते हैं । डॉ० चटर्जी पहाड़ी भाषाओं के सम्बन्ध में भी विशेष जानकारी नहीं दे सके हैं । स्वर–व्यंजनों का आधिक्य या लोप होना, एक स्थान से दूसरे स्थान की भाषा में दृष्टिगोचर होना सामान्य घटना है एवं मानव के ध्वनि-यंत्रों के कारण भी यह परिवर्तन हो जाता है । यह सब सामान्य एवं साधारण घटनाएँ हैं । इनका प्रमुख कारण है, भाषा-विज्ञान की दृष्टि से सुविधा का प्रयत्न-लाघव एवं भौगोलिक स्थिति का अन्तर । यहाँ एक तथ्य का उल्लेख आवश्यक है । भारतीय संविधान के अनुसार काश्मीरी का भी महत्त्व है । काश्मीरी बोली का अस्तित्व प्रारंभ से ही है । इसका पहाड़ी भाषाओं से सम्बंध अधिक नहीं है । काश्मीरी संस्कृत के अधिक निकट है । अस्तु हमें आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण करते समय काश्मीरी को भी अवश्य स्थान देना है ।

यहाँ इस तथ्य की भी चर्चा आवश्यक है कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण करते समय हम हिन्दी को केन्द्र मानकर करेंगे । परिणामतः वर्गीकरण का चित्र सुस्पष्ट ढंग से समझा जा सकता है । वर्गीकरण करते समय भाषाओं की प्रमुख बोलियों का संकेत उचित है, जो साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । डॉ० चटर्जी ने वर्गीकरण में कहीं तो केवल प्रमुख भाषा का ही उल्लेख किया है, एवं कहीं क्षेत्र की केवल उपभाषाओं का ही उल्लेख किया है । उदाहरणार्थ, डॉ. चटर्जी ने संशोधित वर्गीकरण में दक्षिणी वर्ग के अन्तर्गत केवल कोंकणी एवं हळबी का उल्लेख किया है, वास्तव में ये दोनों मराठी की उपभाषाएँ, उपशाखाएँ हैं ।

डॉ० चटर्जी के वर्गीकरण की वैज्ञानिकता की ओर ध्यान देने पर निम्न तथ्य स्पष्ट होते हैं। वे इस प्रकार हैं: —

(प) वर्गीकरण, भौगोलिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से, डॉ० ग्रियर्सन के वर्गीकरण के सदृश्य ही अपूर्ण है।

(फ) मध्यदेशीय वर्ग में 'उर्दू' का उल्लेख अनुचित है। 'उर्दू न तो कोई बोली है, न उपभाषा। न ही इसका स्थान एवं देश काल है। अपितु खड़ी बोली के करीब की बोली के साथ अरबी फारसी शब्दों के प्राबल्य वाली वाणी है एवं मुगलों ने अरबी लिपि को लिखने के माध्यम अपनाया था। उसे चटर्जी उर्दू के रूप में आधुनिक भारतीय आर्य भाषा मानते हैं पर सर्वथा अनुपयुक्त है। पंजाबी, राजस्थानी, एवं गुजराती को जिस आधार पर चटर्जी ने एक ही श्रेणी में रखने का प्रयात्न किया है। उसी आधार पर पृथक् श्रेणी में भी रख सकते हैं। इस संबंध में गुजराती, पंजाबी एवं राजस्थानी भाषा का विवरण "भारतीय आर्य भाषाएँ एवं हिन्दी से सम्बन्धित साहित्यिक भाषाएँ तथा उपभाषाएँ" लेख देखिये। इसी तर्क के अनुसार हम अवधी, बघेली से छत्तीसगढ़ी को पृथक् वर्ग में रखने के लिए बाध्य हैं।

(ब) दक्षिणी वर्ग के अंतर्गत डॉ० चटर्जी ने मराठी का उल्लेख न कर कोंकणी, हलबी का उल्लेख किया है, यह भी तर्क बाह्य ही है।

प्रस्तुत तथ्यों के परिणामतः यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का पुनर्वर्गीकरण किया जाय। जिस समय हम आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण की ओर बढ़ते हैं, तो यह स्वीकार करना होता है कि मध्यदेश की भाषा हिन्दी को केन्द्र मानकर वर्गीकरण किया जाय। यहाँ पर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण की रूपरेखा निम्नतः है—
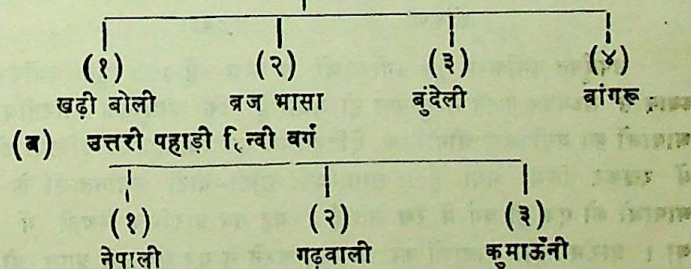
(त) उत्तरी पहाड़ी वर्ग
    (१) काश्मीरी
(ड) पश्चिमोत्तरी वर्ग
    (१) लहँदा
(क) सुदूर पश्चिमी वर्ग
    (१) सिन्धी
(ख) मध्य पश्चिमी हिन्दी वर्ग
    (१) राजस्थानी
(ग) पूर्वी हिन्दी वर्ग
    (१) अवधी, (२) बघेली
(छ) पूर्वी मध्य दक्षिणी हिन्दी वर्ग
    (१) छत्तीसगढ़ी
(ङ) सूदूर पूर्व हिन्दी वर्ग
    (१) भोजपुरी, (२) मैथिली, (३) मगही
(च) उत्तर पश्चिम वर्ग
    (१) पंजाबी
(छ) दक्षिणी पश्चिमी वर्ग
    (१) गुजराती
(ज) पूर्वी वर्ग
    (१) उसमी या असमिया   २) बंगला
(झ) दक्षिणी पूर्वी वर्ग
    (१) अड़िया या उत्कली
(प) दक्षिणी वर्ग

मराठी
कोंकणी   हळबी

उपर्युक्त वर्गीकरण पूर्व वर्गीकरणों से भिन्न है। प्रस्तुत वर्गीकरण का ध्यान से अध्ययन करने से सुस्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं व्यावहारिक दृष्टियों को ध्यान में रखकर किया गया है। सामान्यतः छोटी–मोटी समानताओं के कारण भाषाओं को एक ही वर्ग में रख लेते हैं। यह सब प्रारंभिक स्थिती में सम्भव था। प्रारंभ की भाषाओं का अध्ययन करने से यह सूत्र हमें प्राप्त हो जाता

है कि सभी भाषाओं का विकास एक ही मूल भाषा से हुआ है। धीरे-धीरे भाषाओं का विकास होते गया, एवं उनमें विशिष्ट अन्तर आते गया है। यह तो मत स्वीकार करना ही होगा। अगले खंड में नागपुरी और जैसलमेरी बोली का भाषावैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। दोनों बोलियों के अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा कि सूदूर पश्चिम की बोली और मध्य क्षेत्र की बोली में कितना साम्य है।

निरन्तर अध्ययन के आधार पर ही मैंने पूर्व वर्गीकरणों का पुनर्मूल्यांकन किया है। प्रस्तुत पुनर्वर्गीकरण विशिष्ट परिवर्तनों को प्रेषित करता है।

मैंने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को चौदह खंडों में विभक्त किया है। पूर्व वर्गीकरणों के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हुआ है कि हिन्दी से सम्बन्धित भाषाओं को अन्य प्रमुख भाषाओं के साथ एक ही वर्ग में रखने का उपक्रम हुआ है। जैसे राजस्थानी, यह हिन्दी वर्ग की भाषा है इसे पंजाबी और गुजराती के साथ रखने का कोई अर्थ नहीं है। इसी प्रकार बिहारी को बंगला के साथ। मैंने तो छत्तीसगढ़ी को भी पृथक् वर्ग में ही लेना उपयुक्त समझा है। यह ठीक है, कि सामान्यत: समस्त भारतीय आर्य भाषाएँ एक ही साथ आ जाती हैं। परन्तु आधुनिक विकसित रूप धीरे धीरे भिन्नत्व की ओर बढ़ते गया है। पहाड़ी वर्ग की भाषाओं को भी मैंने पृथक् वर्ग में दर्शाया है। पहाड़ी वर्ग की वैसे ये भाषाएँ हिन्दी वर्ग की राजस्थानी से सम्बन्धित हैं। पहाड़ी वर्ग राजस्थानी से शब्द ही नहीं, वरन् व्याकरण की दृष्टि से भी निकट है।

अन्त में वर्गीकरण के सम्बन्ध यही कहना है कि सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ साम्यता की दृष्टि से निश्चित रूप में निकट ही हैं, परन्तु भौगोलिक एवं व्यावहारिक कारणों के परिणाम स्वरूप ध्वनियों, शब्द भेदों, पद रचना अर्थ तत्त्व आदि में भिन्नताएँ परिलक्षित होने लगी हैं। वैसे तो हम करीब-करीब के क्षेत्रों में भी भिन्नता पाते हैं। समस्त भारतीय आर्य भाषाओं के संक्षिप्त विवरण से सुस्पष्ट ही है कि हमें विकसित वर्गीकरण की आवश्यकता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत वर्गीकरण आपके अध्ययन के लिए प्रस्तुत है।

———

'खंड–ब'

७. नागपुरी बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

नागपुर की प्राकृतिक स्थिति का अपना महत्त्व है। दक्षिण के पठार का प्रारंभ नागपुर के उत्तर में फैले हुये विन्ध्य सतपुड़ा की पर्वत श्रृंखलाओं से होता है। नागपुर पठारी भाग में बसा हुआ है। परंतु दक्षिण क्षेत्र के अन्य नगरों की अपेक्षा नागपुर समतल भूमि पर स्थित है। नागपुर के पास रामटेक की प्रसिद्ध टेकडी है। कहते हैं, जहाँ महाकवि कालिदास ने बैठकर 'मेघदूत' सदृश्य अनुपम कृति की सर्जना की थी।

जिस समय हम नागपुर के ऐतिहासिक महत्त्व की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो ज्ञात होता है, कि नागपुर गत दो-तीन सौ वर्षों से गौंड एवं भोंसला राजाओं की महत्वपूर्ण राजधानी रही है। कुछ इतिहासकारों का मत है, कि नागपुर का राज्य उत्तर में रीवा, सोहागपुर तक फैला हुआ था। पूर्व में कटक उडीसा तक विस्तृत है। डॉ० आर० एम्० सिन्हा ने अपनी पुस्तक Bhonslas of Nagpur The Lost phase में पृष्ठ ३३ पर यह उल्लिखित किया है, कि सन् १८०३ के युद्ध के पूर्व नागपुर राज्य की सीमा उत्तर में सोहागपुर रीवा तक फैली हुयी थी। पूर्व में कटक उडीसा तक विस्तृत थी। डॉ० सिन्हा ने नागपुर राज्य की सीमा का विवरण इस प्रकार दिया है–

नर्मदा के उत्तर में :–जबलपुर, घमोनी और साहागपुर तक।

नर्मदा के दक्षिण में :–मंडला, सिवनी, छपरा, होशंगाबाद, बैतुल–मुलताई तक।

बरार में :–गाविलगढ, नारनाला, आकोट, आरगांव तक।

पूर्व में :–सरगुजा, संभलपुर और उसके हिस्से, कटक उडीसा तक।

डॉ० आर० एम्० सिन्हा ने सन् १९१८ में नागपुर राज्य–सीमा का विवरण इस प्रकार दिया है। इसका भी आधार जेकिन्स की रिपोर्ट है।

अ) देवगढ़ के ऊपरी हिस्से–अर्थात्–छिदवाडा जिला।

ब) देवगढ़ का दक्षिणी हिस्सा–नागपुर जिला।

स) वैनगंगा का क्षेत्र– (अ) भंडारा जिला।
(ब) चांदा जिला।

द) छत्तीसगढ़ और इसके हिस्से।

नागपुर नगर का महत्व प्राचीन काल से है। नागपुर का नामकरण नाग-वंश की उत्पत्ति के साथ जोड़ा जाता है। नागपुर मराठी भाषा के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। मराठी भाषा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। मराठी भाषा के क्षेत्र में आने पर भी नागपुर की बोली मराठी भाषा से भिन्न है। नागपुर क्षेत्र की बोली सीमावर्ती बोली है। डॉ० ग्रियर्सन ने मत प्रतिपादित किया है, कि "वास्तव में नागपुरी वर्हाडी बोली की ही भांति है।" वास्तव में 'नागपुरी बोली' और बरार की 'वर्हाडी बोली' अपनी पद रचना शब्द समूह, ध्वनि समूह में बहुत भिन्न है। नागपुरी बोली का क्षेत्र वहाँ पर पूर्ण हो जाता है, जहाँ से वर्हाडी बोली का क्षेत्र प्रारंभ होता है। नागपुरी बोली, वर्हाडी से वहीं पर कुछ साम्य रखती है, जहाँ पर दोनों बोलियों की सीमा है। यदि हम भारत में यत्र-तत्र फैले हुये मराठी भाषियों की मराठी की ओर ध्यान दें तो स्पष्ट होगा कि उनकी भाषा नागपुरी बोली से दूर है, मूल मराठी के अधिक निकट है।

नागपुर भारत के मध्य भाग में स्थित होने के कारण उसका महत्व है। अनेक भाषा-भाषी यहाँ पर आकर बसे हैं। आज वे यहीं के हो गये हैं। नागपुर अपने क्षेत्र का प्रमुख नगर रहा है और आज भी है। सामान्यतः नागपुर की प्रमुखता विदर्भ क्षेत्र में आज भी स्वीकार की जाती है।

नागपुरी मराठी भाषा के क्षेत्र में आता है। यह निश्चित है, परन्तु राजकीय प्रमुखता का महत्त्व भी होता है। सन् १८१८ की जेकिन्स की रिपोर्ट के अनुसार नागपुर राज्य की भाषा उस समय गौंडी थी। जेकिन्स ने स्पष्ट किया है, कि उस समय नागपुर राज्य में १।५ गौंड रहते थे। इस कारण नागपुर राज्य की बोली गौंडी थी। कोर्ट और नागपुर शहर की भाषा मराठी थी। (Bhonslas of Nagpur : The Lost Phara–Page–44 : Pb. 1970).

नागपुर मराठों की अपेक्षा गोंड राजाओं के अधिकार में अपेक्षाकृत बहुत अधिक समय रहा है। परिणामतः गोंड राजाओं का राज्य जहां तक फैला हुआ था वहाँ तक नागपुरी बोली का अवश्य ही प्रभाव रहा था। इसी के साथ गोंड राजाओं के समय जो स्थान प्रमुख रहे होंगे, उन स्थानों का प्रभाव नागपुरी बोली पर अवश्य पड़ा है। यही कारण है, कि नागपुरी बोली, वर्हाडी तथा मराठी भाषा से अपेक्षाकृत भिन्न होती गयी है। नागपुर में बहुत लम्बे समय से रहनेवाले हिन्दी भाषियों का भी बहुत प्रभाव पड़ा है। परिणामतः नागपुरी बोली का स्वरूप गौंडी, हिन्दी एवं मराठी का मिश्रित रूप है। यह मिश्रित रूप उसे वर्हाडी एवं मूल मराठी से बहुत भिन्न बना देता है। नागपुरी बोली का सही अध्ययन करना हो तो हमें नागपुर नगर के प्राचीन क्षेत्रों का

ही अध्ययन अभिहित होना चाहिये। साथ ही नागपुर से लगे हुये छोटे-छोटे गांवों के निवासियों की बोली का अध्ययन करना उपयुक्त होगा।

नागपुरी बोली या नागपुरी मराठी का क्षेत्र-वैनगंगा और वर्धा नदियों के दोआब का हिस्सा है, जो उत्तर में सतपुड़ा पर्वत की सहायता से एक सीमा बना लेता है। इस प्रकार नागपुरी बोली का क्षेत्र नागपुर और वर्धा जिलों का सम्पूर्ण भाग, चांदा का पश्चिमी भाग, भंडारा का पश्चिमी भाग, छिंदवाडा की सौंसर तहसील और बालाघाट जिले का कुछ भाग है।

नागपुरी बोली के क्षेत्र का विवरण तो इस प्रकार है। परन्तु नागपुरी बोली के अध्ययन के लिए तो इस समय नागपुर के आस पास के छोटे छोटे गांवों के निवासियों की बोली की ही ओर ध्यान देना आवश्यक है।

२

मराठी की नागपुरी बोली : ध्वनि तत्त्व

नागपुरी बोली का क्षेत्र वर्धा नदी तक फैला है। चारों तरफ की सीमा पर विचार किया जाय तो स्पष्ट है, कि दक्षिण-पूर्व के कुछ भाग को छोड़कर अधिक भाग हिन्दी प्रदेश की सीमा से लगा हुआ है। परन्तु नागपुरी के शुद्ध रूप का प्रारंभ तो नागपुर से हुआ है, एवं वही रूप आसपास के प्रक्षेत्र में फैला। ध्वनियों का जहाँ तक प्रश्न है नागपुरी देवनागरी से सम्बन्धित है। मराठी भाषा की एक बोली है, एवं इसमें मराठी ध्वनियों का समावेश है, परन्तु जैसा कि कहा जाता है कि "कोस-कोस पर बदले पानी और बारह कोस पर वाणी।" विचार किया जाय तो स्पष्ट है, कि दक्षिण-पूर्व के कुछ भाग को छोड़कर अधिक भाग हिन्दी प्रदेश की सीमा से लगा हुआ है के आधार पर बोली की ध्वनियों में अन्तर आता ही है। यहां मैं नागपुरी बोली की ध्वनियों पर चर्चा करता हूँ। मैं नागपुरी को सुनते-सुनते जितना समझ सका हूँ, उसके आधार पर यहाँ विवेचन प्रस्तुत करता हूँ।

नागपुरी बोली के ध्वनि-तत्त्व की ओर ध्यान दिया जाय, तो ज्ञात होता है, कि नागपुरी बोली की ध्वनियाँ देवनागरी लिपि से सम्बन्धित हैं। नागपुरी बोली मराठी की उपभाषा है। मराठी देवनागरी में लिखी जाती है। मैं हिंदी भाषा पर विचार करते समय देवनागरी लिपि की वर्णमाला की चर्चा कर चुका हूँ। यहाँ पर मैं नागपुरी बोली की ध्वनियों पर ही विचार करता हूँ।

नागपुरी बोली में स्वरों की ध्वनियों में किसी प्रकार परिवर्तन हुआ है, यह विचारणीय प्रश्न है। नागपुरी बोली में अधिकतर शब्दों के प्रारंभ में जो 'आ' आता है उसका उच्चार 'अ' किया जाता है। जैसे–

आराम–अराम; आज–अज; आवारा–अवरा; आंबाडी–अंबाडी; आकाश–अकाश आदि।

'ए' का उच्चारण 'अ' होता है–

वाटेन–वाटन; धावेन–धावन; शिवेन–शिवन; चिचेचे–चिचच; वाहेन–वाहन; लावेन–लावन आदि।

'ओ' का 'व' उच्चारण किया जाता है–

ओळख–वरख; ओसरी–वसरी; ओखटे–वखट; ओंगळ–वंगर; होय–व्हय; ओटा–वटा आदि 'ओ' का कभी-कभी 'अ' भी उच्चारण किया जाता है। होय–व्हय; होता–व्हता-इनमें 'ओ' का 'अ' हो गया है।

इसी प्रकार नागपुरी बोली में कुछ व्यंजनों के उच्चारण में भी परिवर्तन परिलक्षित होता है। मराठी का विशिष्ट व्यंजन 'ळ' का उच्चारण नागपुरी में कई बार 'ल' की ध्वनि में ही होता है। यह परिवर्तन कहीं-कहीं दिखाई पड़ता है। जैसे खेळ–खेल परन्तु अधिकतर 'ळ' का 'र' की ध्वनि में ही उच्चारण होता है। इसके उदाहरण हम स्वरों के ध्वनि उच्चारण के समय ध्यान में ला चुके हैं। यह नागपुरी की अपनी निजी विशेषता है। जैसे–

ओळख–वरख 'ळ' का 'र' उच्चारित किया जाता है। अन्य उदाहरण–
वाकळ–वाकर; जवळ–जवर; विळा–इरा; पाळणा–पारना; वेळणी–येरनी; दळण–दरन; आदि।

'ण' का 'न' उच्चारण होता है। यह भी नागपुरी की ध्वनि सम्बन्धी विशेषता है। जैसे–

पाणी–पानी; माणूस–मानूस; वाणी–वानी; ब्राह्मण–ब्राह्मन; कणीस–कनीस; आदि।

नागपुरी में जिस प्रकार 'ण' का 'न' उच्चारण बेरोक-टोक किया जाता है उसी प्रकार 'न' के बदले नागपुरी बोली में मराठी के विपरीत 'ण' का उच्चारण भी किया जाता है।

शनिवार–सणवार; विनायक–इणायक; नदी–णदी; पानावर–पाणावर; नागपुर–णागपूर; दर्शन–दर्शण; आदि।

'श' का 'स' उच्चारण होता है। जैसे–

श्रावण–सरावण; शंकर–संकर; विशेष–इसेस; शनिवार–सणवार; वर्ष–वरीस; स्मशान–मसान आदि। इसी प्रकार 'ष' का भी 'स' ही उच्चारण होता है–

वर्ष–वरीस ऊपर उदाहरण दिया है। पुरूष–पुरूस। जिस प्रकार नागपुरी में 'श' का 'स' उच्चारित रूप है, उसी प्रकार 'स' का 'श' भी उच्चारित होता है।

सावकार–शावकार; समई–शमई; सामील–शामील आदि।

'य' का 'व' उच्चारण होता है। जैसे–

उपाय–उपाव; अन्याय–अन्याव; आदि।

कहीं-कहीं पर 'व' का 'य' भी सुनने को मिलता है।

वेडा–येडा; वेळ–येर; वेसन–येसन; वेणी–येणी; वेल–येल आदि।

जिस प्रकार 'ळ' का 'र' और 'ळ' का 'ल' उच्चारित होता है, उसी प्रकार कहीं-कहीं पर 'र' के बदले 'ल' की ध्वनि सुनने को मिलती है–

रडे–लडे; रफाड–लफाड आदि।

कहीं-कहीं पर शब्दों के उच्चारण में व्यंजन के साथ लगी स्वर की मात्रा प्रमुख हो जाती है और व्यंजन का लोप हो जाता है जैसे–

विहीर–इहीर; विहीण–इहीण; विडा–इडा; विस्तार–इस्तार आदि।

जब शब्द में 'र' के बाद में 'ट' वर्ग के व्यंजन आते हैं तो 'र' का लोप हो जाता है एवं 'ट' वर्ग का व्यंजन द्वित्त हो जाता है जैसे–

पोरटा–पोट्टा; कारटे–काट्ट; हुरडा–हुड्डा; वरठी–वट्ठी आदि।

नागपुरी बोली में कुछ शब्दों के अंतिम वर्ण पर विशेष जोर देकर ध्वनित किया जाता है–कागद, बैल आदि।

वर्णागम :–

नागपुरी बोली में वर्णागम के उदाहरण भी बहुत हैं, तथा अर्द्ध व्यंजनों को पूर्ण रूप से ध्वनित करते हैं। जैसे–

वर्ष–वरीस; भ्रतार–भरतार; प्रेम–पिरम; लक्ष्मी–लक्षमी; भक्त–भगत; किसान–किरसान आदि।

वर्णलोप :–

जिस प्रकार नागपुरी बोली में वर्णागम के उदाहरण मिलते हैं, उसी प्रकार वर्णलोप की ध्वनियों में भीं सुनने को मिलती हैं। जैसे–

म्हणून–म्हून; करायचं–कराचं; जेवावयासाठी–जेवासाठी; आलो होतो–आल्तो; गेलो होतो–गेल्तो; करायचा–कराले; कुणीकडून–कुकडून, कुणीकडे–कुकडे, गेल्या होत्या–गेल्त्या आदि।

वर्ण विपर्यय :–

अन्य वोलियों के अनुसार नागपुरी बोली में भी 'वर्ण विपर्यय' के उदाहरण मिलते हैं। जैसे :–

नुकसान-नुसकान, शिशवी-पिवसी, खाब-खंबा, इसी प्रकार निम्न शब्दों की ओर भी ध्यान दिया जा सकता है :–

जन्म-जलम, रुपया-रुपा, भुवई-भिवई, वृंदावन-ब्रिंदावन, अडयळा-अडथडा, व्यवहार-येव्हार, नारळ-नारेन ।

तृतीय पुरुष के सम्बन्ध :–

नागपुर के आस-पास के गाँवों में नागपुरी बोली की एक और विशेषता परिलक्षित होती है । गाँवों के निवासी उच्चारण करते समय तृतीय पुरुष के समय 'त' के बदले 'थ' का उच्चारण करते हैं–

तो, ती, ते–थो, थी, थे ।

कारक विभक्ति–

(१) द्वितीया, चतुर्थी– ले, स, द्वितीया-चतुर्थी प्रथम के बदले नागपुरी मराठी में ले प्रत्यय धडल्ले से प्रयुक्त होता है ।

उदा. मले, तुले, आम्हाले, तुम्हाहिले, मानसाले, मानसाहिले ।

नागपुर में उच्चवर्ग में मात्र 'स' का प्रयोग किया जाता है ।

उदा. मानसान, मानसाईस, म्हाल्यास । 'मी' को भी मस, मज रूप में प्रयुक्त करते हैं ।

(२) तृतीया–नं. आ–मिन, तुनं, तिनं, त्या–हिनं, म्या, त्वा, इ.

(३) पंचमी-ऊन, हून–माह्याहून, त्याच्याहून, कुकडून (कुणीकडून), माह्याखून, तुझ्याखून, (त्याच्याकडून) ।

(४) षष्ठी–चा, हा–शिष्ट मराठी में प्रथम पुरुषी व द्वितीय पुरुषी 'झा' प्रत्यय केवल उच्चवर्ग में प्रयुक्त होता है । अधिकतर लोक प्र. पु. व द्वि. पु. एकवचनी 'हा' प्रत्यय प्रयुक्त होता है ।

उदा. माहा, तुहा इ.

प्रथम पुरुषी व द्वितीय पुरुषी अनेक वचन में और तृतीय पुरुषी अन्य वचन में मात्र 'चा' ह, प्रत्यय लगाते हैं ।

उदा. आमचा, तुमचा त्याचा, त्याहीचा, गावाइचा ।

(५) सप्तमी-आत, इत, हीत–मानसात, मानसाइत, मानसाहीत, गावात गावाइत, गावाहीत, वावरात, वावराइत, वावराहीत इ.

(६) संबोधन–गा, व–'गा' यह प्रत्यय स्त्रीलिंग संबोधन ।

उदा. कागा येगा, आगा (पुलिंग) काव, येव, काव (स्त्रीलिंग)

अनुस्वार–

नागपुरी बोली में मराठी सदृश्य अनुस्वार सम्बन्धी कोई निश्चित नियम सुस्पष्ट नहीं है । कहीं अनुस्वार उच्चरित हो जाता है, तो कहीं पर नहीं ।

उदाहरण-कुंकू-कुकू, कलावंतीण-कळबातीन, चिंच-चीच, गुंतला-गुतला, भित-भीत, मुंज-मूज इन शब्दों में अनुस्वार का लोप हो गया है, तो कुछ शब्दों में अनुस्वार का आगम हो गया है। मागणे-मांगणे, मोगरा-मोंगरा, मग-मंग आघन-आंन।

लिंग सम्बन्धी विचार-

(क) नागपुरी बोली में स्थानवाचक नामों का प्रयोग पुलिंग के रूप में होता है। मूल मराठी में स्थान वाचक नामों का प्रयोग स्त्रीलिंग सदृश्य प्रयोग होता है। नागपुरी बोली में इतवारा, बुधवारा, मंगळवारा उच्चारित होता है।

(ख) इसी तरह नागपुरी में, नागपुर के गांवों के नाम भी पुल्लिग सदृश्य प्रयुक्त होते हैं। वास्तव में जो गांव अकारान्त के हैं। वे नपुँसकलिंग के हैं, परन्तु इनका प्रयोग पुल्लिग के रूप में हो जाता है। जैसे-

सावनेर, उमरेड, काटोल, नरखेड, आदि के लिए "ते गांव" के बदले 'तो गाव" प्रयोग किया जाता है। इसी के सदृश्य नागपुरी में एकरान्त क्रिया रूप या नपुंसकलिंग नाम अकारान्त के रूप में उच्चरित होते हैं। जैसे-

बसणे-बसणं, उठणें-उठणं, आलें-आलं, गेले-गेलं, मारलें-मारलं, करणें-करणं आदि क्रिया रूप हैं, तथा वांगें-वांग, रायते-रायतं आदि अकारान्त संज्ञा रूप हैं। साथ ही पोरगं-सुलगं आदि प्रयोग भी सुनने को मिलते हैं।

एक तथ्य हमें और ज्ञात होता है। द्वितीया-चतुर्थी के 'ले' व षष्ठी अनेक वचन का 'चे' प्रत्यय को न लें तो अन्य सभी प्रत्यय अकारान्त ही हैं।

इसी तरह नागपुरी में उकारान्त नपुंसकलिंग के नामों के बहुवचन का उच्चारण करते समय भी अकारन्त का रूप अधिक मिलता है। जैसे-

लेकरू-लेकरूचें-लेकरं, वासरूचे-वासरं।

उपर्युक्त विवरण से यह सुस्पष्ट हो जाता है, कि नागपुरी में पुल्लिग का तो आधिक्य है ही, साथ ही अकारान्त रूप, नागपुरी बोली की बोलचाल का सजीव रूप परिलक्षित होता है।

लिंग भेद-

नागपुरी बोली में स्थानवाचक नामों का प्रयोग पुल्लिग सदृश्य किया जाता है। जिस पर भी नागपुरी बोली में लिंग भेद की स्थिति स्पष्ट नहीं है। यहाँ तक कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से बोलते समय स्त्रीलिंग का ही प्रयोग करता है। उदाहरणार्थ- 'तो जाते' का अर्थ हिन्दी जानने वाला मराठी के अनुसार वह जाती है समझेगा। उसी तरह स्त्री अपने सम्बन्ध में बोलते समय "मी जातो" पुल्लिग के सदृश्य प्रयोग करती है।

लिंग भेद की ओर ध्यान दिया जाय तो सर्वप्रथम संस्कृत की समानता ज्ञात होती है। संस्कृत में प्रथम पुरुष एकवचन वर्तमान काल में स्त्री और पुरुष दोनों "अहम् गच्छामि" कहते हैं। यही बात नागपुरी बोली में मिलती है। 'मी जातों', 'मी बसतों', 'मी चालतों' आदि। परन्तु यह तथ्य वर्तमान काल के क्रियापद तक ही सीमित है। भूतकाल में "ली" प्रत्यान्त स्त्रीलिंगी रूप प्रयोग लाते हैं। 'मी बसली', 'मी आली' आदि।

दूसरा तथ्य, पुरुष वर्ग स्त्रीलिंगी रूप का ही प्रयोग दूसरे पुरुष के लिए करते हैं।

तीसरा तथ्य और विशिष्ट है। नागपुरी बोली में "कृष्ण मथुरात जाताते" के बदले कृष्ण भक्त "कृष्ण मथुरास जाते" ही बोलते हैं। इसमें वे आदर की भावना मानते हैं।

काल की चर्चा लिंग भेद के साथ करते हुये यहाँ अपूर्ण वर्तमान व भूतकाल का वैशिष्टच भी समझ लेना आवश्यक है। नागपुरी बोली में "करून राह्यलो" अथवा "येऊन राह्यलो आहे" पर हिन्दी का स्पष्ट प्रभाव है, परन्तु प्रयोग की दृष्टि से नागपुरी बोली की निजी महत्ता स्पष्ट करता है। इसमें अर्थाभिव्यक्ति की पूर्णता एवं वैशिष्टच है।

भूतकाल के लिए नागपुरी बोली में 'ए' प्रत्यय लगाते हैं। उदारणार्थ—रडे, करणे आदि।

अव्यय—

अव्यय का विचार करने पर भी स्पष्ट हो जाता है, कि नागपुरी बोली में मराठी भाषा से कुछ भिन्नता है।

(क) मराठी का "खाली" नागपुरी में 'खालत', 'खालथा' रूप हो गया है।

(ख) 'मध्ये' का 'मंधी' या मंधात रूप में प्रयोग है। सप्तमी का अर्थ प्राप्त कर लिया है।

(ग) 'साठी' का प्रयोग करते समय नागपुरी में चतुर्थी के प्रारंभ रूप में वर्णलोप हो जाता है। उदाहरणार्थ—जेवण्यासाठी—जेवासाठी इसमें 'ण्य' का लोप हो गया है और वह 'जेवासाठी' रह गया है। उसी प्रकार येवासाठी, देवासाठी, पेवासाठी, आदि। 'साठी' के प्रयोग में 'के लिए' का भी अर्थ निहित है।

(घ) मराठी का 'करून करून' का 'करूकरू' हो गया है। इसी के अनुरूप पाहू पाहू, देऊ देऊ, घेऊ, घेऊ का भी प्रयोग होता है। इसमें भी वर्णलोप नियम लागू होता है।

(ङ) मराठी का 'पेक्षा' के बदले 'पक्षी' रूप प्रयोग में आता है। 'परोस' का प्रयोग भी होता है।

(च) 'सारखा' के बदले 'वानी' का प्रयोग होता है। उदाहरण–फुलावानी, येण्यावानी आदि।

(छ) 'मूळे' के बदले 'च्यानं' का प्रयोग होता है। उदा. पैश्याच्यानं आदि।

(ज) 'कडून' के बदले 'कून' या 'खून' का प्रयोग होता है। इकडून–इकून, कुणीकडून-कुखून, आदि।

(झ) 'कोणीकडे' के बदले 'कुकडे' का प्रयोग होता है। उदा. कुणीकडून कुकडून या कुठून आदि।

(अ) 'पुष्कळ' के बदले 'भाई' या 'बहू' का प्रयोग होता हैं। उदा. रंग बहू, बहू काम आदि।

(त) जेव्हा–जव्हा, जही, केव्हा–कव्हा, कही, तेव्हा–तव्हा, तही, रूप नागपुरी में प्रमुख रूप से मिलते हैं।

(थ) मराठी का 'काय' प्रत्यय नागपुरी में विभक्ति प्रत्यय के साथ प्रयुक्त होता है। 'काय' के साथ 'ला', 'चा', 'ची' आदि प्रत्यय लगाते हैं। कायला, कायले, कायचा, कायची रूप प्रयोग में आते हैं। यही नागपुरी बोली की निजी विशेषता है।

नागपुरी बोली : मराठी का एक रूप–

नागपुरी बोली के ध्वनि तत्व के अध्ययन से सुस्पष्ट है, कि नागपुरी बोली मराठी भाषा से अपने निजी प्रयोगों के कारण स्वतंत्र अस्तित्व लिये हुये है। भिन्न नहीं है, अपितु अपनी स्वाभाविक एवं व्यावहारिक दृष्टि के अनुसार स्वतंत्र महत्व का प्रतिपादन करने में समर्थ है। यह निश्चित है, कि यह मराठी का ही एक रूप है। यह तो स्वीकार करना ही होगा, कि नागपुरी बोली 'बरारी बोली, से प्रयोगों की दृष्टि से कुछ भिन्न है। वचन, लिंग एवं वर्तमान काल की दृष्टि से संस्कृत की समानता का वैशिष्टच लिये हुए है। इससे यह तो सुनिश्चित है, कि नागपुरी बोली का स्वतंत्र अध्ययन अपरिहार्य ही है।

३

नागपुरी बोली : शब्द भंडार

किसी भी स्थान की बोली या भाषा का शब्द भंडार भौगोलिक स्थिति, राजनैतिक स्थिति, एवं वहाँ पर आकर बसने वाले लोगों के द्वारा प्रयुक्त शब्दों पर निर्भर करता है। साथ ही उस बोली के जीवन्त रहने एवं निरन्तर उपयोग में आते रहने पर भी आधारित रहता है। यह तो हुयी सामान्य बात। इसी के साथ उस बोली की पाचन शक्ति तथा वहाँ के मूल निवासियों की प्रवृत्ति पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है।

नागपुरी बोली के क्षेत्र की चर्चा करते हुये, हम यह तो विवेचित कर ही चुके हैं, कि नागपुरी बोली पर हिन्दी का प्रभाव भौगोलिक स्थिति एवं हिन्दी क्षेत्र के निवासियों के नागपुर तथा उसके आस-पास के क्षेत्र में आकर बसने के कारण पड़ा है। गौंडी का प्रभाव राजनैतिक स्थिति के कारण है। मराठी का प्रभाव तो मराठी की एक उपभाषा होने के कारण सुस्पष्ट ही है। इसके अनन्तर समय, परिस्थिति आदि कारणों से अंग्रेजी, फारसी-अरबी का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। संस्कृत, एवं अपभ्रंश[1] भाषाओं का भी जाने-अनजाने में प्रभाव समस्त भारतीय क्षेत्र पर पड़ा ही है। इन सभी प्रकार के प्रभावों को ध्यान में रखते हुये भाषाशास्त्रियों ने शब्दों को चार खंडों में रखे हैं। तद्भव, तत्सम, देशी और विदेशी। सर्वप्रथम यह समझ लेना अनिवार्य है कि तद्भव, तत्सम, देशी और विदेशी शब्दों से क्या तात्पर्य हैं।

तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों को भी दो खंडों में विभक्त कर सकते हैं। भारतीय शब्दों के अन्तर्गत तत्सम, तद्भव और देशी शब्द आते हैं, एवं भारतीय खंड के बाहर के शब्द विदेशी कहलाते हैं।

तत्सम– तत्सम उन शब्दों को कहते हैं, जो संस्कृत के शुद्ध रूप में प्रचलित हैं। अर्थात् जिस रूप में प्रचलित के उसी रूप में बिना किसी परिवर्तन के जो शब्द वर्तमान समय में प्रचलित हैं। इनके दो रूप हैं–एक परम्परागत एवं दो निर्मित।

तद्भव– तद्भव शब्द वे कहलाते हैं, जो प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं से विकसित होते हुये वर्तमान समय में उनके रूपों में परिवर्तन हो जाता है।

देशी– देशी शब्द वे कहलाते हैं, जिनकी व्युत्पत्ति का संकेत प्राचीन आर्य भाषाओं में नहीं मिलता, परन्तु आधुनिक समय में उनका विकास हुआ है।

विदेशी– विदेशी शब्द वे शब्द कहलाते हैं जो अरबी, फारसी, अंग्रेजी, जर्मनी, फ्रांसीसी, चीनी, जापानी आदि भाषाओं से आये हैं, एवं आधुनिक समय में उनका प्रयोग निजी भाषाओं के साथ निजी शब्दों के रूप में होता है।

नागपुरी बोली का जहाँ तक प्रश्न है, यह स्वीकार करना ही होगा कि इस बोली में भी उपर्युक्त चारों प्रकार के शब्दों का अस्तित्व है। परन्तु नागपुरी स्थानीय बोली होने के कारण इसके शब्दों के रूप में परिवर्तन अधिक

---

[1] मैं अपभ्रंश को स्वतंत्र भाषा का स्वतंत्र विकसित रूप स्वीकारता हूँ। वास्तव में भाषाओं के अध्ययन से यह सुस्पष्ट हो जाता है, कि संस्कृत, प्राकृत के बाद की कड़ी या विकसित रूप अपभ्रंश ही है।

मिलता है । अस्तु हम चारों खंडों का पृथक विवरण स्पष्टतः नहीं दे सकते । यहाँ इतना भर कहा जा सकता है कि कुछ शब्द तत्सम् रूप में मिलते हैं। उदा. "चक्र" संस्कृत का शब्द है । इसका "चक्रम" रूप नागपुरी बोली में मिलता है । अन्य सभी प्रकार के शब्द नागपुरी में स्पष्टतः देखने को मिलतें हैं। इनके पृथक् उदाहरण न देते हुये शब्दों के विवरण के अंतर्गत समय-समय पर उल्लेख करेंगें ।

नागपुरी बोली मूल मराठी से कुछ भिन्न होती गयी है। इसके प्रमुख कारण हैं, नागपुर का हिन्दी क्षेत्र के करीब होना। (२) नागपुर में गौंड राजाओं का प्रभुत्व आदि ।

नागपुरी बोली के शब्दों में परिवर्तन एवं विकास किस प्रकार होता है, इस सम्बन्ध में हम नागपुरी बोलीं के ध्वनितत्त्व पर विचार करते समय देख चुके हैं । प्रस्तुत खंड में केवल नागपुरी बोली के शब्दों की सूची दे रहा हूँ ।

अंदाज	कुड़की	तब्येत	कुरबानी
अजब	कुड़ता	नतीजा,	इज्जत
आफत	किराया	नाराज	खंम,
आटा	कोशिस	रोजदार	टांग
अनपढ़	गजब	शौक	धोतर
इरादा	गरज	सेंदूर	पोल
इशारा	गरव	मूलूख	दिल्लगी
इंतजाम	जूलूस	भावी	फिदा
इतका	जुलूम	जानवर	तंग
उजागर	जरूर	अड्डा	लिपापोती
औजार	तकरार	अर्ज	हवा
कुदणे	खिल्ली	बात	दम
उखड़णे	आसान	गहिरा	बीमार
छाटणें	कब्जा	गहीरा	भीड
छिनणे	कुरबानी	वाचक	मंजूर
भूक्की	चुनाव	वचकाना	मंजुरी
भित	उड़ाऊ	वचक	मालूम
आनार	फिकीर	. बेहेत्तर	मालम
तंगी	फिकर	बहतर	वापस
टंचाई	मोक्का	मैफल	वापिस
आबादी	कचेरी	मिफल	मिजाज

आगू	कचरी	रखवालदार	मिजास
फोरन	पैदल	रखवाल	उबळा
पिछू	बिल्कुल	झापड़	अयब
ढेरी	बिलकुल	इज्जत	ऐब
तावडतोब	तरीका	रोजगार	दोष
पीछे	तरिका	बिजली	मोहल्ला
ढीग	घुटका	विजक	मोहला
तावडतोड़	इतल्ला	श्रीमंत	दावा
वालू	सुचना	फवारा	खटला
रेती	काश्तकार	कारंजे	घोट
मुकद्मा	किसान	बहस	हटेला
चिठ्ठी	तालेवर	वादविवाद	हट्टी
कागज	शेतकरी	मोची	अड़ाणी
कागद	खादण	चंमार	दिवाल
आंब	खाण	रईस	
आंब्या	गवार	सनकी	

ऊपर करीब-करीब १५० शब्द दिये हैं। ऊपर्युक्त शब्दों का अध्ययन स्पष्ट करता हैं, कि नागपुरी बोली में शब्दों का प्रयोग निम्न विशिष्टताओं के साथ होता है।

(अ) नागपुरी बोली में कुछ शब्द स्थानीय एवं भौगोलिक प्रभाव के कारण परिवर्तित हो गये हैं।

(ब) नागपुरी बोली में परिवर्तित रूप के साथ अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द उसी रूप में भी प्रयुक्त होते हैं।

(ब) नागपुरी बोली में अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि विदेशी शब्दों का भी प्रयोग होता है।

(ड) नागपुरी बोली में मूल मराठी के शब्दों के मूल रूप भी प्रयोग में आते हैं।

(इ) नागपुरी में संस्कृत के तत्सम रूप भी मिलते हैं।

(क) राजनीतिक प्रभाव के कारण नागपुरी बोली में गोंड आदि बोलियों के भी शब्द मिलते हैं। उदा. कौडी, आदि।

नागपुरी बोली के शब्द भंडार का विस्तृत अध्ययन यह निश्चित रूप से सुस्पष्ट करता है, कि नागपुरी बोली पर हिन्दी और हिन्दी की उपभाषाओं का

अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। यदि हम नागपुरी बोली के वाक्य प्रयोग की ओर ध्यान दें तो इस मत की पुष्टि हो जाती है कि नागपुरी बोली पर हिन्दी का वस्तुतः अत्यधिक प्रभाव है। अस्तु हम यहाँ संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हैं।

नागपुर बोली में वाक्य प्रयोग एवं क्रियाओं का प्रयोग बहुत कुछ हिन्दी के सदृश्य है। सामान्यतः मराठी की मूल प्रकृति हिन्दी के समान ही है, बाद में धीरे-धीरे अन्तर आया है। हिन्दी का प्राचीन रूप देखने पर ज्ञात होता है कि वर्तमान समय के अनुसार हिन्दी में वाक्य नहीं लिखे जाते थे।

प्रा. सुरेश डोळके ने कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, वे इस प्रकार हैं :-

अड्डा जमवणे-अड्डा जमाना। इज्जत उतरवणें-इज्जत लेना : धोतर सुटणे-(घबराना) धोती छोडना। ठन ठन गोपाल। थंडी लागणे - ठंड लगना। हवा उडणे-(बदनामी होवा) हवा उडना। करून टाक-कर डालो। करून घेतल्या गेलो-कर लिया गया। येऊन गेला-आ गया। करून राहिला-कर रहा। आदि।

खोजणे, छानणे; छिनणे; पछाड़णे, कुदणे; पिलवणें आदि क्रिया रूप भी हिन्दी के सदृश्य ही है।

इसी प्रकार संस्कृत से भी वाक्य सदृश्यता देखने को मिलती है। जैसे अहं गच्छामि-मैं जाता हूँ या मैं जाती हूँ। उसी प्रकार नागपुरी बोली में भी मी जातो-मैं जाता हूँ या मैं जाती हूँ होता है।

तात्पर्य यह है कि नागपुरी बोली का विस्तृत एवं गहन अध्ययन करते ही यह स्पष्ट हो जायगा, कि नागपुरी बोली का आन्तरिक रूप भारतीय भाषाओं और बोलियों से सम्बन्धित है। भले ही फिर भी वह सूदूर पूर्व की ही कोई बोली क्यों न हो।

ऊपर हमने १५० के करीब शब्दों पर दृष्टि डाली है। नागपुरी बोली के ध्वनि तत्त्व पर की विशेषताओं को समझने का प्रयत्न किया है। वाक्य प्रयोग आदि का अध्ययन भी स्पष्ट करता है, कि नागपुरी बोली संस्कृत मूल मराठी के सन्निकट तो है ही, साथ ही वर्तमान भारतीय भाषाओं में हिन्दी के अधिक निकट है।

इस समय नागपुरी बोली का शुद्ध स्वरूप हमें नागपुर के आसपास के खेडों-पाडों में ही मिल सकता है। कारण, नागपुर तो इतना बड़ा शहर बन गया है, कि नागपुरी बोली का अध्ययन नागपुर के आधार पर अपूर्ण ही होगा। यहाँ मैं ऐसे शब्दों की सूची दे रहा हूँ, जो गांवों में बोले जाते हैं। साथ ही नागपुर के इतवारी, बुधवारी, महाल के कुछ हिस्सों में सुनने को मिल जाते हैं। यही नहीं, इन भागों के अलावा सुशिक्षित नागरिकों के मुंह से भी कभी-कभी ऐसे शब्द सुनने को मिलते हैं, जो नागपुरी बोली के महत्त्व को प्रतिपादित करते हैं।

आखर, इन्धन, अल्याड, रान्धनी, रान्तैवर, शिव, चोखर, थडी, थाली, दाह, मुदी, जर, सखू, मैत्तर, म्होर, गोहन, चैत, पान, असे, चव्हाटा, अव्हाटी, दोहन, दस्तुरी, भरतार, पल्याड, शिवार, शिरणी, चूडाचोळी, चोळीलुगडे, पसा, सन्काडी, कोन्टा, गोन्ट, पेव, घरठाव, चावडी, पाहुणपणा, भात्कं, अनकष्टी, चेता, जागा, फुलसं, फुलवरा, गोत, वेटाळ, इलुसा, थोडासा, एकार, लवन, सव, सवय, झोपा, जोत, धुरकरी, गाडीवान, हाकणारा, षोहा, भुकाळणे, भूक लागणे, सूड, (इन्धन) सकाळ, उद्या, वेस, चांगले, वज, काळजी, भांड, दागिना सुवा, सरळ, अड, विहीर, हार, ओळ, रांग, मानगी, आजार, गायकी, गाई, चारणारा, ढोकरी, म्हाली, न्हावी, वाढ़ी, सुतार, दांड, दानखड, घुई (आम की कोर) कुपी, शीशी, न्हाणवली, (स्नान की हुयी युवती), शिळान, तुफान, मेघाळा, यावेळी, धडी, उतार, मानोस, लइ, लय, पुष्कळ, खिदान, खूण, तिखी, पुदाक, कटकट, जिता, जिवंत, वखडा, ढेकूण, मूंगना, शेवगा, धोपा, अळू, सांबार, भेदर, भुट्टा, लपन, हुळूक, तपन, ऊन, तपणे, खरासनी, पारिजातक, वेगळचार, भुलबी, वानावानाची (नाना प्रकारका) आसनी, ढोवर (धीवर), मोठी माय, माखा, (भगिनीपति), भासरा (मोठा दीर), साळा, (मेंव्हणा), झाडणी, वायेशी, पोपट (ओले वाल)

उपर्युक्त शब्दों के अध्ययन से सुस्पष्ट है कि नागपुरी में चैत, इंधन जैसे शब्द संस्कृत के निकट हैं। ढीवर, चेता, उतार जैसे शब्द हिन्दी के निकट ह।

८. जैसलमेरी बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

राजस्थान का प्राचीन नाम राजपूताना था। उसे मरू भूमि भी कहते हैं। कारण सर्वत्र मरुस्थल फैला हुआ है। राजस्थान का सुदूर पश्चिमी भाग मरूस्थल की दृष्टि से अधिक प्रसिद्ध है। जैसलमेर राजस्थान के सूदूर पश्चिम में स्थित है, एवं इसकी सीमा सिंध से लगी हुयी है। आजकल पाकिस्तान का भाग है।

जैसलमेर सुदूर पश्चिम में मरुस्थल का महत्वपूर्ण भाग है। जैसलमेर से करीब तीन मील की दूरी पर पहाड़ी भाग है। वहाँ के स्थान को बाड़ी कहते हैं। मरूस्थल में हरित भूमि के अनुपम दृश्य को हम 'बाडी' के माध्यम से देख सकते हैं।

डॉ० गियर्सन के समय डॉ० टेसीटेरी ने राजस्थानी भाषा का अध्ययन किया था। जैसलमेर में बोली जाने वाली बोली को 'मारवाडी' के अन्तर्गत लिया है। उनका मत है कि मारवाडी का वास्तविक स्वरूप जोधपुर तथा उसके आसपास के इलाकों में मिलता है। वैसे जैसलमेर की बोली को मारवाडी के अन्तर्गत ले सकते हैं। यदि हम पृथक् रूप से अध्ययन करें, तो सुस्पष्ट होगा कि जैसलमेरी मारवाडी और जोधपुरी मारवाडी में वही अन्तर परिलक्षित होता है, जो नागपुरी मराठी और वर्हाडी मराठी में।

जैसलमेर राजस्थान का महत्वपूर्ण राज्य (state) रहा है। प्रारंभ में इसका विस्तार बीकानेर एवं जोधपुर स्टेट्स तक फैला हुआ था। कहा जाता है, कि अलाउद्दीन खिलजी ने भी जैसलमेर पर चढ़ाई की थी, परन्तु उसे खाली हाथ वापिस लौटना पड़ा था। ऐतिहासिक दृष्टि से जैसलमेर का निजी महत्व है।

जैसलमेर सिंध प्रांत से लगा हुआ है। परिणामतः जैसलमेरी पर सिंधी भाषा का कम-अधिक प्रभाव पड़ा है। मुगलकालीन शासन काल में यहाँ पर मुगल लोग अधिक रहते थे। परिणामतः अरबी-फारसी शब्दों का भी प्रभाव है। आज से ७० वर्ष पूर्व तो जैसलमेर में अरबी लिपि में हीं पढ़ाई होती थी।

आज भी जैसलमेर में यवनों की संख्या कम नहीं है। पंजाब भी इसकी सीमा से लगा हुआ है। अतः पंजाबी का भी प्रभाव है। गुजरात की भी सोमा करीब ही है। अस्तु गुजराती का भी प्रभाव है। इस प्रकार जैसलमेरी पर सिंधी, पंजाबी, गुजराती, अरबी, पारसी आदि भाषाओं का प्रभाव पड़ा है।

संक्षिप्त में जैसलमेर के क्षेत्र की ओर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है, कि जैसलमेर की बोली की किन-किन भाषाओं और बोलियों का प्रभाव है।

जैसलमेरी बोली के क्षेत्र का जहाँ तक प्रश्न है, यह निश्चित रूप से स्वीकार करना होगा, कि जैसलमेरी बोली ५० से ६० वर्गमील के क्षेत्र तक फैली हुयी है। जैसलमेर से पूर्व में पोकरण तक और दक्षिण में बाड़मेर तक और उत्तर में वाप तक जैसलमेरी बोली जाती है। इन क्षेत्रों के आगे जोधपुरी मारवाड़ी का प्रभाव परिलक्षित होता है।

२.

जैसलमेरी बोली : ध्वनि तत्त्व

जैसलमेरी बोली राजस्थान की सूदूर पश्चिमी की बोली है। जैसलमेरी बोली की ध्वनियाँ देवनागरी के सम्बन्धित है। देवनागरी की वर्ण माला पर विचार कर चुके हैं। अतः वर्णमाला पर विचार करना आवश्यक नहीं है। यहाँ पर जैसलमेरी बोली की ध्वनियों की ही चर्चा करता हूँ।

जैसलमेरी बोली में स्वरों की ध्वनियों में किस प्रकार परिवर्तन परिलक्षित होता है, यह विचारणीय है। इसमें 'ओ' ध्वनि की अधिकता पायी जाती है।

जैसलमेरी में कई बार शब्द के आरंभ का 'अ' का लोप हो जाता है। मध्य में 'अ' का आगम हो जाता है। अ का इ भी हो जाता है। कहीं-कहीं अ का ए भी हो जाता है। जैसे—

१) अ का लोप

अकाल—काळ, अहंकार—हंकार

अ का आगम

२) जंबुद्वीप–जंबुअद्विप, दुष्ट–दुअष्ठ

अ का आ

३) कज्जल–काजल, भारत–भारथ

अ का ए

४) साथ–साथे, जहाज–जेहाज

इसी प्रकार जैसलमेरी में कहीं कहीं अ का उ; अ का ओ सब में भी ध्वनि परिवर्तन मिलता है।

इसी प्रकार 'आ' ध्वनि में भी परिवर्तन मिलता है। आदि मध्य, अन्त एवं में लोप तथा 'आ' के बदले अन्य स्वर–व्यंजनों का प्रयोग आदि। जैसे–

प्रारंभ में 'आ' का लोप

१) आदित्यवार–दीतवार

प्रारंभ में 'आ' का आगम

२) रण–आरंण

अनय में 'आ' का 'अ'

३) रेखा–रेख, रहे

प्रारंभ के 'अ' का 'अ'

४) हाथ–हथ, बात–बत, राजपूत–रजपूत

'इ' स्वर का परिवर्तन भी अनेक रूपों में मिलता है। उद्धहरण यों हैं–

'इ' का 'अ'

१) कवि–कव, हरि–हर, दिन–दन, रीति–रीत

'इ' का 'ई'

२) मुनि–मुनी, भूमि–भूमी, कवि–कवी

'इ' का 'एं'

३) निःश्वास–नेसास, पुनः–पुणे

अन्तय में ई का लोप

४) पद्मिनी पदमण; कामिनी–कामण

'ई' का 'ए'

५) उम्मीद–उमेद (फारसी), मुनीश्वर–मुनेसर

'उ' ध्वनि का भी परिवर्तन जैसलमेरी में अनेक रूपों में मिलता है। जैसे–

उ का अ

१) साधु–साध, धनुष–धनष,

'उ' का 'अ'

२) पशु–पसू; गुरु–गुरू

'उ' का 'औ'

३) कौन–कुण

'अ' की ध्वनि के कुछ परिवर्तन रूप

'अ' का 'अ'

१) मालूम–मालम

२) ऊ का आगम व के बदले

लवण–लूण; पान्डव–पांडू

'ए' की ध्वनि के कुछ परिवर्तित रूप

१) 'ए' प्रारंभ में लोप

एकादशी–ग्यारस

२) 'ए' का इ में परिवर्तन

एकान्त–इकन्त; नरेन्द्र–नरिन्द्र

'ऐ' के कुछ परिवर्तन रूप

१) 'ऐ' का 'ए'

कैसे–केडा

२) ऐ का ओ

सैनिक–सोनिक

ओं के कुछ परिवर्तित रूप

१) 'ओ' का आगम 'अय' और 'अव' चे बदले

समय–समो; माधव–माधो; अवतार–औतार

२) 'ओ' का 'उ'

गोपाल–गूवाळ

औ के कुछ परिवर्तित रूप

१) औ का आगम व के बदले

चवदह–चौदह

२) 'औ' के बदले 'ओ'

गौर–गोरो; गौतम–गोतम

व्यंजनों की ध्वनि परिवर्तन की स्थिति जैसलमेरी मे निम्म प्रकार से है।

'क' के परिवर्तित रूप

१) क का लोप

मस्तक–माथो

२) 'क' की ध्वनि ख के रूप में महाप्राण हो जाती है।

रुक्मिणी-रुखमणी

३) 'क' का 'ग'

उपकार–उपगार

'ख' का परिर्तन

१) ख का ह

रेखा–रेह; मुख–मुँह

२) 'ख' ध्वनि कभी 'ष रूप में भी मिलती है

लखन–लषन (यहाँ ष का उच्चारण ख के रूप में होता है।)

ग का परिवर्तन

१) ग का महाप्राण

मृग–मिरघ

२) 'ग' का 'य'

सागर–सायर

'घ' का परिवर्तन

१) 'घ' का अल्पप्राण

रघुनाथ–रुगनाथ

२) घ का ह

मेहा–मेह

'च' की ध्वनि के रूप

१) 'च का महाप्राण

पश्चात्–पछे (बाद में)

२) 'त्य' के बदले 'च'

नृत्य–नाच, सत्य–सांच

३) च का ज

पंच–पंजों

'ज' की ध्वनि के रूप

१) 'ज' का 'द'

कागज–कागद

२) 'ज' का 'य'

गज–गय

'ट' की ध्वनि के रूप

१) 'ट' का महाप्राण

दृष्टि–दीठ

२) 'ट' का 'ड'

कोटि–कोड या करोड; भट–भड. कपाट–कवाड

ड की ध्वनि के रूप

१) ड के बदले ड

कवाड–किवाड, यडड–मोड

२) 'ड' का 'ळ'

षोडश–सोळा

'ण' की ध्वनि के रूप

१) 'ण' का 'न'

कृष्ण किसन

'त' की ध्वनि के रूप

१) 'त' का लोप

उत्साह–उछाह

२) 'त' का महाप्राण

भरत–भरथ; कंत–कंथ

३) 'त' का मूर्धन्य

कर्तन–काटणो

४) 'त' का 'व'

शत-सव

'थ' की ध्वनि के रूप

१) 'थ' का मूर्धन्य

स्थान-ठाव

२) 'थ' का 'ह'

नाथ–नाह

द की ध्वनि के रूप

१) 'द' का लोप

द्वार–बार; द्वारश–वारस या बारा

२) 'द' का महाप्राण

दुहिता–कीवडी

३) 'द' का 'व'

भेद–भव, पाद–पांव

'ध' की ध्वनि रूप

१) 'ध' का अल्पप्राण

समाधि–समादि

२) 'ध' का 'झ'

सन्धा–सांम, धीमर–मींवर

३) 'ध' का 'ह'

वधू–बहू

४) 'ध' कप मूर्धन्य

वृद्ध–बूढो

'न' की ध्वनि के रूप

१) 'न' का लोप

जमीन–जमी

२) 'न' का 'ण'

जन–जण

३) 'न' का 'ल'

नीलो–लीलो, जन्म–जलम

'प' की ध्वनि के रूप

'प' का महाप्राण

१) परशु–फरसो

२) 'प' का 'व'

कपाट–त्रिवाड, दीपक–दीवो

'व' को ध्वनि के रूप

१) 'व' का लोप

चौवीस–चोईस

२) 'ब' का आगम

जलना–बलना

'भ' की ध्वनि के रूप

१) स्वभाव-सहाव

'म' की ध्वनि के रूप

१) 'म' का 'व' हो जाता है

ग्राम–गांव, चामर–चंवर

२) 'म' का 'व' हो जाता है

सम्मुख–सनमुख, सम्मन–सनमान

३) 'म' का 'ब' हो जाता है

आम–आंबो

'य' ध्वनि के रूप

१) 'य' का लोप

पुण्य–पुन, ज्योति–ज्योत, नियम–नेम

२) 'य' का 'व' हो जाता है

न्याय–न्याव

३) 'य' का 'ज' हो जाता है

योगी–जोगी, युग–जुग

४) 'य' का 'ए' हो जाता है

नयन–नेत्र, नैन, अजय–अजै

'र' की ध्वनि के रूप

१) 'र' का लोप

प्रण–पण, भ्रमर–भंवर, श्रावण–साँवण

२) 'र' का 'ल' हो जाता है

दारिद्रय–दाळद

'ल' ध्वनि के रूप

१) 'ल' का 'ळ' हो जाता है

माला–माळ, तूल–सूळ

२) 'ल' का 'ड' हो जाता है

धूल–धूड

३) 'ल' का लोप

फालगुन–फागण

'व' ध्वनि के रूप

१) 'व' का 'प'

ऐरावत–ऐरापत

२) 'व' का 'ब'

वात–बात; वन–बन

३) 'व' का 'म'

रावण-रामण

४) 'व' का 'ओ'

अवसर–औसर; भव–भो

'ह' के ध्वनि रूप

१) 'ह' का लोप

दरगाह–दरगा; ब्रह्मा–बिरमा

२) 'ह' का आगम

लास–ल्हास; लश्कर–ल्हसकर

३) 'ह' का 'ए'

फतह–फते (फारसी शब्द)

४) 'ह' का 'घ'

सिंहल–सिंघल; सिंह–सिंघ

५) 'ह' का 'व'

पाहुणा–पावणा; विवाह–ब्याव

'ह' का परिवर्तन निम्न प्रकार से भी मिलता है–

गहने–गेणा; जहर–जैर; चेहरा–चैरो

स्वर और व्यंजनों की ध्वनियों का परिवर्तन होता है। इसका संक्षिप्त यहाँ पर दिया गया है।

लिंग–विचार

जैसलमेरी बोली में दो लिंग हैं। स्त्रीलिंग और पुंलिंग। जैसलमेरी के लिंग परिवर्तन की ओर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि अधिकतर लिंग परिवर्तन 'ई' प्रत्यय लगाने से होता है। जैसे–

पुल्लिग	स्त्रीलिंग
दादो	दादी
बडो	बडी

पुल्लिग	स्त्रीलिग
छेटा	छोटा
कुत्तो	कुत्ती
घोडो	घोडी
काको	काकी
बडेरो	बडेरी

कुछ रिश्तेदारी शब्दों में इस बात का अपवाद है। जैसे–

पुल्लिग	स्त्रीलिग
बाप	माँ
बुअड	बुआ
बीरों (भाई)	बेन (बहिन)

कुछ 'ई' करान्त शब्द पुल्लिग भी हैं। जैसे–

मोती; पाणी; दही

कुछ पशुओं के लिग भेद इस प्रकार है–

पुल्लिग	स्त्रीलिग
ऊँट	ऊंटनी
हाथी	हाथिणी
हंस	हंसणी

इसी प्रकार कुछ प्राणीवाचक शब्द केवल पुल्लिग और कुछ केवल स्त्रीलिग हैं–

पुल्लिग–कागलो, (कौओ); माछर, पपैयो आदि।

स्त्रीलिग–कोयल, बतक, चील, मकडी, मैना आदि

कुछ सम्बन्ध सूचक शब्द पुल्लिग और स्त्रीलिग दोनों भेदों में प्रयुक्त होते हैं। जैसे–

मायत, बडेरा, टावर आदि

वचन–जैसलमेरी में वचन दो हैं।

एक वचन और बहुवचन।

(अ) जैसलमेरी में बहुवचन बनाने के कुछ साधारण नियम इस प्रकार हैं–
एकवचन से बहुवचन बनाते समय ओं को जोडते हैं–

एक वचन	बहुवचन
बात	बातों
रात	रातों
आँख	आखों
दात	दातों

(ब) इ, ई का बहुवचन या लगाकर बनाते हैं–

एक वचन	बहुवचन
छोरी	छोरियों
चोटी	चोटियों
घोडी	घोडियाँ
तेली	तेल्यों

(स) ओ का बहुवचन आं के रूप में होता है–

एकवचन	बहुवचन
घोडो	घोडां
भालो	भालां
गधो	गधां
छोरो	छोरां
दिकरो	दिकरां

जैसलमेरी मे कारक में विभक्तियों के रूप निम्न प्रकार से प्रयुक्त होते हैं–

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता–	इ, उ,	आ
कर्म–	अई, उ,	आँ, ऐं
करण–	अ, इ, ई	ए, एण
सम्प्रदान–	अइ, आं, ई	ए, आ
अपादान–	ऊं, अह, आ	ए
सम्बन्ध–	ह, आ	हां
अधिकरण–	अइ, अइं, इ,	ए, आं
सम्बोधन–	अरे, ओ, या, अरै	हे, हेज

जैसलमेरी में सर्वनाम हिन्दी से भिन्न है मैं के लिए "हूं" प्रयुक्त होता है। 'हूं' के साथ साथ 'म्हैं' भी प्रयुक्त होता हैं।

द्वितीय या मध्यम पुरुष के रूप में 'तुम' के बदले 'तें', 'तूं' प्रयुक्त होता है। बडो के लिए 'थे' और 'थाँ' प्रयुक्त होता है। यह बहुवचन में इसी रूप में रहता है। 'तैं' 'तूं' का बहुवचन 'तमे' और 'तुम्हों' भी प्रचलित है।

तृतीय पुरुष या अन्य रूप के रूप में 'व' 'वे' के बदले 'ओ' का प्रयोग होता है।

इसी प्रकार जैसलमेरी में निश्चयवाचक, संबंधवाचक, प्रश्नवाचक, अनिश्चयवाचक, आदरवाचक सर्वनामों का भी प्रयोग होता है। क्रमशः सर्वनाम

इस प्रकार हैं– यो, वो, सो (सोल, उठा, तिकरे, सोइ, जिको, जेणे, ज्या आदि; कुण (कौण, कीं, केणे आदि); किणी, (कोइक आदि), ये (राज, थोने)।

जैसलमेरी में विशेषण, क्रिया-विशेषण तद्धित, कृदंत, प्रत्यय, उपसर्ग, अव्यय आदि का भी विशिष्ट रूप से प्रयोग होता। क्रियाओं का जहाँ तक प्रश्न है, जैसलमेरी में क्रिया के सभी काल प्रयुक्त होते हैं। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि क्रियाओं के रूप जोधपुरी मारवाडी से भिन्न हैं।

जैसलमेरी में "मैं जाता हूँ" को इस प्रकार कहते हैं। "हूँ जावोंइ।" "मै जाऊंगी।" के लिए "हूँ जाइस" कहते हैं।

३

जैसलमेरी : शब्द भंडार और वाक्य

जैसलमेर के सम्बन्ध में इसके पूर्व चर्चा कर चुके हैं। वास्तव में जैसलमेर का किसी समय विशेष महत्व था। एवं इसका राज्य पंजाब सिंध, पेशावर और अफगानिस्तान तक फैला हुआ था। जैसलमेर का कला, प्राचीन-संस्कृति और स्थापत्य कला, की दृष्टि से अपूर्व गौरव था एवं इसकें गौरव की कथाएँ मुग्धकंठ से गायी जाती रही है और रहेगी। वर्तमान परिस्थितियों के मध्य जैसलमेर क्षेत्र का पुनः महत्व बढ़ गया है। कारण जैसलमेर क्षेत्र की सीमा का ७० % हिस्सा पाकिस्तान से ही घिरा हुआ है।

जैसलमेर क्षेत्र का विवेचन यह तो सुस्पष्ट करता ही है कि यहाँ अनेक प्रकार की भाषाओं के शब्द अपने आप विकसित होते गये हैं।

जैसलमेरी तथा हिन्दी शब्द

जैसलमेरी-हिन्दी
ओलन-सब्जी
अंडीर-अघोरी
ओठी-सवार (ऊँट-सवार)
अवाचूक-एकाएक, सहसा
ओटो-चौकी
अडसी-बडसी-बदला-लेना
ओंजो-कठिन
औसारी-घट बनाया
कोहणे-बदसूरत
खोदियो-गधे का बच्चा
खोयो-बैल
खोपी-गाय
खाळ-मोरळी, नाली
खोडो-लंगडो
खाथो-जल्दी
गाया-कपडे
गेडी-छड़ी, लकड़ी
गुजी-उबाली हुयी छाछ
गेंगचियो-पत्थरका टुकडा
गिगट-गुठली (खारक या बडे बेद की)
गोठियो-मार, प्रेमी
गूजर-तीसरी पत्नी
गुलरियो-कुत्ते का बच्चा
गुल्थ-बोरी
गाडर-भेड
घडोंची-बर्तन रखने की लडकी की तिपाई
घघडा-बेर की गुठली
घाई-जल्दी
घणो-अधिक
घडिया-पहाडे
छोरो-लड़का
छोरी-लड़की

जैसलमेरी-हिन्दी
आसंग-हिम्मत
आभो-आकाश
कांळीग-खरबूज सदृश्य राजस्थान का विशेष पात्र
किरडी-छिपकली
कागली-पतंग
कुपलो-माचिस
उधड़-पत्थर
टाट-बकरी
फुलरी-छोटी बकरी
ढिब्बो-रेतका टीला
बीजणो-पंखा
फुठरी-सुंदर
हाढो-कौआ
बौगरी-झाडू
ऊंदरो-चूहा
पोतियो-साफा (शोक में पहनते हैं)
माठो-धीमी
लाडो-पति
रिढ़-भेड
वाकळ-कुएँ का पानी
भींगु-साथी
किराड-बनिया
चमाट-थप्पड
बीजो-दूसरी
दिकरो-बेटा
दिकरी-बेटी
पालट-तालब का पानी
थाप-थप्पड, ताली
बे-दो

जैसलमेरी-हिन्दी	जैसलमेरी-हिन्दी
छोनो-गुप्त, छिपा हुआ	दाड़म-अनार
छाली-बकरी	पोतरो-पोता
जुग-युग	पोतरी-पोती
घोनो-बकरी	भूती-मंदिर के चारों ओर की परिक्रमा
भड़क-गौरव	भूअड़-फूफा
हुडीजै- भेड़ की गर्भावस्था	बुआ-फूफी
सील-भेड़ की गर्भावस्था	तोंबड़ो-गुंड
मोया-मूर्ख	पोंतरणौ-भूल जाना
भूंड-बुराई	लाई-गरीब
मूंगडी-दरवाजा	हेली-सहेली
फडीजै-बकरी की गर्भावस्था	धीयडी-लड़की
जाग--घोडी की गर्भावस्था	डोंभू-बर्र
डोंग-लाठी	नसणो-भागना
थूथो-जंगली, देहाती	तळो-पैदा
लोसरियो-गाय का बच्चा	सूंख-घूस
मूंडौ-मुंह	बासती-अग्नि, आग
धणीमार--ऊँट	पाधरो-सीधी
पोंगळ-ऊँट	लाडी-स्त्री
सई-सहेली	ढक-झूला
बिसोंई-विश्राम	ढूंढों-खंडहर
टेलियों-चाकरी करनेवाला	सावली-चील
बेली-मित्र, दोस्त	संतरी-कुएँ से पानी निकालने की रस्सी
लीडो-दूसरी पत्नी	टुकड़ा--तबला
लाखियों-यार, प्रेमी	डाकण-राक्षसनी
मजासणौ-दवात	बी-डर, भय
सूजी-दर्जी	भूंडो-खराब
डूंगर-पहाड़	चोटाळ-पत्थर की चट्टान
रेळो-पानी का बहाव	दाड़मसाही-अनारदाना
टोंको-पानी का कुंड	दादो-दादा
डोंगर-पशु	नोना-नाना, छोटा
चिभड़ी-ककड़ी	
सुतराड़-बढई	

जैसलमेरी-हिन्दी	जैसलमेरी-हिन्दी
सिगडीं–सिगड़ा	नोनी–नानी, छोटी
बोरसी–चूल्हा (लोहे का)	मायत–घरके बड़े लोग
रोई–जंगल	ऐबी–बदमाश
हेलो–आवाज, पुकारना	नेडा–पास, नजदीक
ताजणौ–मजबूत	अग्घा–दूर
घधड़कूट–मजबूत	कनेरा–पास के
मोटी–खसम, पति, दोस्त	बोडो–बहरा
जैंख–आँधी	जख–आँधी

जिस प्रकार नागपुरी बोली में एक ही वाक्य पुल्लिग और स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है।

हूँ जाँवोई–मैं जाती हूँ और मैं जाता हूँ।

परिशिष्ट–१

नागपुरी बोली के कुछ अंश

(१)

गिरिजेले जाला लेक । महादेवा मोठी खुसी ।
बारस्याच्या दिसो । त्यानं बलावले ऋसी ।।

(२)

तुरसी बिंद्रावनी । राधिका घाले येनी ।
बाजुबंद नेले दोन्ही । क्रिस्ननाथयाने ।।
मोकऱ्या केसाची । किती घालू ग मी येनी
मैना हिंडे रानीवनी ।।

(३)

बाई पंढरपुरात । रुमाबाई माही सखू
कोऱ्या कागदात कुकू । पाठवील ।।
सावळी कळवातीन । नोको जाऊ वाड्यातून
तुझ्या चढी नायकीन । गोरेबाई माझी ।।

(४)

समुद्र सोकून । नाही गेली व तहान
तुही आंजुर लहान ।।
मालवद घर । खंबे मोजत जाईना
सखा नांदता पाहीन ।।

(५)

लोकाचे लेकरं । खेळली धुरडा माती
गुलाल तुझ्या हाती । राजस बाळा ।।

(६)

अशोक वनामंधी । सीतामाई ग एकली
मुंदी दुरून फेकली । मारुती यानं ।।
झलम्याचा गाडींमंधी । माही मातामाय बसे
बिंदल्याचा हात दिसे ।

(७)

मुलगी पाहू आले । देसीचे देसपांडे ।
खासरा लाल गोंडे
दरनाची पाटी । ठेवली डाव्या आंगड ।
जनी संगऽ पांडुरंग । दस बसे ।

(८)

श्रीरामा तुहा नख । साखरेपरीस गोड
पाण्याचे सुखजड । आठवेना ।

(९)

मोठे मोठे डोळे । भिवया कमानी
रूप तुहा । चंद्रावानी

(१०)

पहिली माही ओवी । पहिला माहा नेह ।
तुरसीखाली राम । पोथी वाचे ।।

(११)

मोठे मोठे ग डोळे । आहे आंब्याच्या फोडी ।
चालता ग डोळे मोडी । राजस बाळ माझा ।

(१२)

रामलक्षुमना । दोघा इचार पडला
सेतु बानाचा बांधला । समुद्रात ।।

◇◇◇◇

जैसलमेरी के कुछ अंश

जैसलमेर के रावल एवं बीकानेर के राव लुणकरण से संबंधित युद्ध के वाद कवि लालजी महड़ू ने यह कवित्त लिखा था-

गुंजाख गैमरां धुवै हत्र सांभल ढोला
जादम सूं कर जंघ फकै थिर भारी बोलां

राजोवाई राव आय नेडो अतरियौ
करां झाल केवाण बींद बांकम बळ भरियौ
खुर खद खैदा खेहा रमण घड़सीसर[1] घोड़ा[2] घणा[3]
धर देह परी नवगढ धिणी बांवळि यात्री वांनवणा ।

इसके पश्चात् एक गीत और बनाया था, उसकी कुछ पंक्तियाँ यों हैं—

देद कुवधची मेद दाखियौ, झूठौ कियौ कवी सूं झौड़ ।
महड़ू तणें वचन रैं माथैं, रातै गढ आयौ राठौड ।

१. घड़सीसर जैसलमेर में सबसे बडा तालाब है । इसका पानी पीने के काम में आता है ।
२. 'घोडा' का बहुवचन 'घोडां' है ।
३. 'घाणा' का अर्थ अधिक और बहुत होता है ।
४. 'तणे' सर्वनाम कारक की विभक्ति है अर्थ है "तेरे" ।

जैसलमेर के रावल लूणकरण की बेटी "उमादे राणी" की लोक कथा बहुत प्रसिद्ध है । यह अपने पति से रूठ गयी थी । जन्म भर साथ में नहीं रही और कहते हैं कि पति की मृत्यू के पश्चात् सती हो गयी थी । सती होने के बाद कवि बारहट आसा ने १४ कवित्त कहे थे, कुछ अंश यों है—

जेण लाज हम्मर, मुवो जूझै रिणथम्भर
जेण लाज पातला, मुवो पावागढ अवर
जेण लाल चुंडराज मूवो नागोर तणे सिर
कान्हड दे जालोर, अने दूदो जेसलगिर
बड धरा लाज राखण बडी, करन सबू खत्रवट करे
सो लाज काज ऊमां सती, मालराव कारण मरे ।
सुर भवन पैस पहुंता सरग, साम लाणी मन रंजियौ
रूसणो मालदे राव सू, भटियाणी इन भंजियौ ।

इसी प्रकार जैसलमेर के रावल हरराज के समकालीन कवि रंगरेलो बीढू के चरित्रों के कुछ उदाहरण यों हैं—

(१) घोडा होय जु काठरा, पिंड कोजै पाषांण ।
लोह तणां लूंगडा, जोइजे जैसांण ।।
राती रिड़ थोहर मध्यम रूंख, दृगपाळ मरतां भूष ।
हुंचैरा तालट आवै हेर, मैं दीठा जादव जैसलमेर ।।

किसान वर्णन :– कडोंडै गेडिय आडे कंध, बल्लद्धां जोतर रास न बंध ।

पणिहारी वर्णन :– पद्मण पाणी जावत प्रात, रुलंत्ती आवत आधी रात
बिलकवा टाबर जोवे बाट, धिनो धर घाट, धिनो घर घाट ।।

जैसलमेर में मांगलिक प्रसंगों पर कुछ गीत गाये जाते हैं, उनके उदाहरण देखिये।

गणेश जी से संबंधि में गीत का कुछ अंश—

(१)

सूंड सुडालो गणपत कोमण गारो, आंछी पीडी रो कोमण गारो।
हे म्हारो विघं विनायक ।।

चालो बिनायक आपो चुडीघर री हाटे, चोखोडा चुडला चिरासो।
बनडी री वोय भरासो। हे मारो विघं विनायक ।।

(२)

बिवाह के विशिष्ट अवसर (बरी) के ससय का गीत—
ढोकम ढोकोणे हे ढोकिया जैसोणे आया उला किया।
मण्डी मे आय उतारिया राजा रूघनाथ सिह दोण दोनिया ।।

कुछ अन्य पद

पाटो घो—पाटो घो ए पाटो घो, पाटो ऊपर पीलापान
म्हें जासो कृष्ण वल्लभरी जान, काका, बाबा सैन जासी ।।

गिगनार—चौक चढयों गिगनार, किरत्यो ढळ रैयो जी ढळ रैया।

रायों रो रंग—रायो रो रंग मोणो रे म्होरां राज, रायो रो रंग मोणो
गुलाबी तम्बू तोणो, वारी हेरी जोडी रा साहब।
रायों रो रंग भोणों रे म्होरा राज।

◇◇◇◇
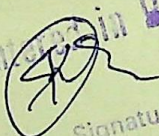
परिशिष्ट–२

प्रमुख सहायक ग्रंथ

१ डॉ० ग्रियर्सन : लिंग्विस्टक सर्वे आफ इंडिया

२ ज्यूल ब्लॉख : भाषा का इतिहास

३ ज्यूल ब्लॉख : भारतीय आर्य भाषा

४ डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी : भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी

५ डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी : राजस्थानी भाषा

६ डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी : ओरिजन एंड डेवलपमेंट आफ बंगाली

७ हॉर्नले : हिन्दी धातु संग्रह

८ तेस्सीतरी : पुरानी राजस्थानी

९ डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा

१० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास

११ डॉ० उदयनारायण तिवारी : हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास

१२ डॉ० हरदेव बाहरी : हिन्दी सेमैंष्टिक्स

१३ शमशेरसिंह नरूला : हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन

१४ डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी : आगरा जिले की बोली

१५ डॉ० गोविंद चातक : मध्य पहाडी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन

१६ पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण

१७ डॉ० भोलाशंकर व्यास : संस्कृत का भाषा शास्त्रीय अध्ययन

१८ मंगलदेव शास्त्री : भाषा-विज्ञान

१९ डॉ० एस० एम० कत्रे : दी फारमेशन ऑफ कोंकणी